आधुनिक कवि

हरिऔध, रत्नाकर, प्रसाद और पन्त
की
काव्य साधना

— स्नातकोपयोगी आलोचनात्मक।

उषा अग्रवाल, एम० ए०
कामिनी श्रान्छल, एम० ए०

नवीन संस्करण
१९६२

दो शब्द

भारत में जनतन्त्र की स्थापना के फलस्वरूप मातृभाषा हिन्दी ने भारतीय शिक्षण व्यवस्था में एक प्रमुख स्थान प्राप्त किया है। स्नातकों का बौद्धिक और मानसिक विकास हमारी मातृभाषा के गहन अध्ययन पर ही निर्भर है।

प्रस्तुत पुस्तक में हरिऔध, रत्नाकर, प्रसाद और पन्त की काव्य साधना पर स्नातकोपयोगी प्रश्नों पर विशद विवेचन किया गया है तथा उनके काव्यों का आलोचनात्मक अध्ययन भी है।

छात्रोपयोगी पुस्तक कहाँ तक बन पड़ी है इसका निर्णय अब हमारे छात्रवृन्द ही कर सकेंगे। पुस्तक को और अधिक रोचक, सरस एवं उपयोगी बनाने के सुझाव सधन्यवाद स्वीकार किये जायेंगे।

—उषा अग्रवाल
—कामिनी कान्छल

अनुक्रमणिका

आधुनिक कविता का उद्भव और विकास

पूर्वाभास—हिन्दी-साहित्य का आरम्भ संवत् १०५० से होता है। वह समय बड़ी हलचल और अशान्ति का था। भारतवर्ष छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया था। कन्नौज, दिल्ली और अजमेर राजपूतों के शक्तिशाली राज्य थे। शक्ति-विस्तार, वीरता-प्रदर्शन, देश-रक्षा और सुकुमारी सुन्दरियों को प्राप्त करने के लिये युद्ध किये जाते थे। राजाओं के आश्रित कवि चारण-भाट अपने आश्रयदाताओं की प्रशस्ति में काव्य-रचना करके उनकी वीरता का बखान किया करते थे। १४वीं शताब्दी के द्वितीय चरण में मुसलमानों का राज्य समस्त भारत में स्थापित हो जाने पर ये वीर गाथाएँ समाप्त हो गई। हिन्दू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिये अवकाश नहीं रहा। उनके सामने हो उनके देव मन्दिर गिराये जाते थे और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था जिसे वे देखा करते थे और कुछ भी नहीं कर सकते थे। इतने भारी राजनीतिक उलट-फेर के बाद हिन्दू जनता पर बहुत दिनों तक उदासी सी छाई रही। अपने पौरुष से हताश जाति के लिये भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के सिवा उनके पास और क्या चारा था। भक्ति काल के निर्गुणोपासक और सगुणोपासक भक्त कवियों ने निराश हिन्दू जनता को ढाढ़स बँधाई। सभी भक्तों ने जनता में यह विश्वास उत्पन्न किया कि संसार में पाप की अति हो जाने पर उसका शमन करने के लिये कोई दैवी चेष्टा होती है। गीता में श्रीकृष्णजी ने कहा ही है :—

> "यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
> अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
> परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
> धर्म संस्थापनार्थाय, संभवामि युगे-युगे॥"

"हे भारत ! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब ही मैं अपने रूप को प्रकट करता हूँ। साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिये और दूषित कर्म करने वालों का नाश करने के लिये, युग-युग में प्रकट होता हूँ।"

कवि शिरोमणि, भक्त प्रवर गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी अपने रामचरितमानस में इन्हीं विचारों का प्रतिपादन किया। उन्होंने भक्तों का रक्षक तथा दुष्टों का संहारक शील, शक्ति और सौन्दर्ययुक्त श्रीराम का स्वरूप हिन्दू जनता के सामने रखकर उसमें साहस और आशा का संचार किया। लोगों को विश्वास दिलाया कि हमारा परमात्मा निराकार ही नहीं अपितु अवसरानुकूल वह सगुण रूप धारण कर शस्त्र हाथ में ले दुष्टों का दमन करता है। रामचरितमानस में उन्होंने कहा है :—

असुर मारि थापहिं सुरन, राखहि निज श्रुति सेतु।
जग विस्तारहि विमल यश, राम जन्म कर हेतु॥

इस प्रकार निराशामग्न तथा हतोत्साहित जन-जीवन को भक्त कवियों ने अपनी शीतल ज्योत्सना से शान्ति पहुँचाई—ऐसी शान्ति नहीं जो निष्क्रिय बना कर सुख से पड़े रहने की प्रेरणा देती है, किन्तु ऐसी शान्ति जो जी की जलन मिटाकर उसे दिव्य-लोक देखने के लिये कर्त्तव्य-पथ पर चलने की क्षमता प्रदान करती है।

इस काल में तुलसी, सूर, कबीर, जायसी आदि श्रेष्ठ कवि हुये जिन्होंने अपने चिन्तन, विचार, भाव, भाषा आदि सभी दृष्टियों से जन-जीवन को प्रभावित किया।

भक्ति काल के अन्तिम चरण में कृष्ण भक्ति की प्रधानता रही, कृष्ण भक्ति में माधुर्य भाव की उपासना पहले ही स्थापित हो चुकी थी अतः हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों ने अत्यन्त भक्ति भाव से श्री कृष्ण और राधा के प्रेम का वर्णन किया। इन कवियों ने सामाजिक आदर्शों और लोकमर्यादाओं की चिन्ता न करते हुये भगवान कृष्ण और गोपियों के स्वच्छन्द विहार और रास लीलाओं के अत्यन्त शृंगारपूर्ण वर्णन उपस्थित किये।

यद्यपि कृष्ण भक्त कवियों ने इस शृंगार को अत्यन्त ही अलौकिक रूप प्रदान करने का प्रयत्न किया तथापि साधारण जनता के लिये वह शृंगार ही

प्रेम वर्णन अलौकिक न रहकर लौकिक ही अधिक बन गया। रीतिकालीन हिन्दी कवियों ने अपने आश्रयदाता नरेशों की विलासमयी प्रवृत्तियों की तुष्टि के लिये कृष्ण भक्त कवियों द्वारा प्रशस्त किये हुये मार्ग को अपनाकर कृष्ण और राधा का आश्रय ले मर्यादा तथा आदर्शहीन लौकिक प्रेम का चित्रण किया। कविता की यह आदर्शहीन धारा लगभग २०० वर्ष तक प्रवाहित होती रही। इस काल के कवियों की दृष्टि जीवन के व्यापक क्षेत्र तक न पहुँच सकी। परन्तु नवयुग के प्रारम्भ और अंग्रेजी राज्य की स्थापना से जनसाधारण का जीवन बदल गया और देश में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। कवियों के आश्रयदाता स्वयं आश्रय की खोज में भटकने लगे। देश विदेशी शासकों के आधीन हो चुका था। उसकी खुशहाली नष्ट हो चुकी थी। देश का धन विदेश चला जा रहा था। ऐसे वातावरण में कवि देश और समाज की समस्याओं से विमुख कैसे हो सकता था। अब उसके सामने जीवन की विकट समस्या के साथ अनेक उलझनें थीं। अतः कवि को नायिकाओं के नख-शिख दर्शन को छोड़ समाज की ओर झुकना पड़ा। अब उसने अपना सम्बन्ध जीवन की वास्तविक समस्याओं से स्थापित किया।

इसीके फलस्वरूप काव्य क्षेत्र में रीतिकालीन प्राचीन काव्य-धारा का प्रवाह रुक गया और नवीन काव्य-धारा नए मार्ग पर अबाध गति से प्रवाहित होने लगी। हिन्दी की नए ढंग की आधुनिक कविता इसी परिवर्तित प्रवाह का परिणाम है।

अब तक हिन्दी काव्य क्षेत्र पर ब्रजभाषा का ही एकाधिकार था किन्तु इस नवजागरण काल में खड़ीबोली भी काव्य-क्षेत्र में ब्रजभाषा की प्रतिद्वन्द्विता करने लगी। कुछ काल तक दोनों धाराएँ समान रूप से हिन्दी काव्य क्षेत्र में चलती रहीं परन्तु शीघ्र ही खड़ी बोली ने ब्रजभाषा को पदच्युत कर उसका स्थान ग्रहण किया। फिर भी ब्रजभाषा में काव्य-रचना सर्वथा बन्द नहीं हुई वह अब भी जारी है।

नवीन युग के आविर्भाव के साथ ही ब्रजभाषा काव्य में परिवर्तन प्रारम्भ हुये। भारतेन्दु के समय में पहले पहल और द्विवेदी काल के प्रभाव के फलस्वरूप ब्रजभाषा काव्य के स्वरूप और शैली की आत्मा बदलने या बदला।

किया गया। भावों की अभिव्यक्ति के ढंग और प्रतीकों को बदल दिया ग और भाषा को भी जनसाधारण की भाषा बनाने का प्रयत्न किया गया। इ प्रकार ब्रजभाषा काव्य प्राचीन काव्य परम्परा को धीरे-धीरे त्याग कर नवयु की ओर उन्मुख हो चुका था। परन्तु प्राचीन ढंग की काव्य परम्परा का भं इस युग में सर्वथा लोप नहीं हुआ था। इस धारा के कवियों में सेवक, सुरा सिंह, सरदार, राजा लक्ष्मण सिंह, गोविन्द गिल्लाभाई, ललित किशोरी तथा ललित माधुरी, लच्छिराम, ब्रह्मभट्ट तथा काशी निवासी बेनीद्विज और हनुमान आदि हैं। इन कवियों ने ब्रजभाषा काव्य की प्राचीन शैली का अनुसरण कर काव्य रचना की। प्राचीन ब्रजभाषा काव्य का एक उदाहरण यहाँ दृष्ट होगा :—

> वारिद के बुंद मंद मंद बरसत अरु,
> मंद मंद बोलत मधुर मन भावनो।
> चंचला चमक चहुँ ओर लसै मंद मंद,
> मंद मंद मारुत सुहात सुख छावनो।
> मंद मंद झूलत हिंडोरै नर नारि सबै,
> मंद मंद पपिहा पुकारै पिया आवनो।
> गोविन्द अनेक ऐसे कौतुक उपावन को,
> आयो मन भावन या पावन सुहावनो॥

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि इस धारा के कवियों ने प्राचीन काव्य परम्परा का ही अक्षरशः पालन किया।

आधुनिक ब्रजभाषा काव्य—नवीन ब्रजभाषा काव्य के जनक भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र कहे जाते हैं। वास्तव में भारतेन्दु ब्रजभाषा के प्राचीन और नवीन काव्य में एक कड़ी के समान कार्य करते हैं। उन्होंने जहाँ प्राचीन परंपरा के अनुसार काव्य रचना की, वहाँ हिन्दी काव्य के नवीन रूप निर्माण में भी पूर्ण योग दिया। उन्होंने कविता को देश की नवीन समस्याओं और जनसमाज के निकट लाकर उसे लोक-कल्याणकारिणी बना दिया। उदाहरण के लिये उनका शृङ्गार वर्णन देखिए :—

बिछुरे पिय के जग सूनो भयो,
अब का करिये कहि पेखिये का।
सुख छांड़ि के संगम को तुम्हरे,
इन तुच्छन को अब लेखिये का।
हरिचंद जू हीरन को व्यवहार कै,
काँचन को लै परेखिये का।
जिन आँखिन में तुव रूप बस्यो,
उन आँखिन सो अब देखिये का।

उपर्युक्त उदाहरण से विदित होता है कि शृंगार रस के वर्णन में भारतेन्दुजी ने प्राचीन रीति परम्परा के शृंगार वर्णन को त्याग कर नवीन दृष्टिकोण प्रतिष्ठित किया था।

भारतेन्दु बाबू ने समाज की समस्या की विवेचना भी की और देश की समस्याओं से मुख नहीं मोड़ा। भारत माता की वेदनापूर्ण स्थिति को देख उन्होंने बड़े हो मार्मिक ढंग से कहा है—

रोवहु सब मिलि के आवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई॥

इस प्रकार भारतेन्दुजी ने हिन्दी कविता में नवीन नवीन विषयों का समावेश किया और नवीन चिन्तन विधि द्वारा भाषा, भाव तथा वर्ण्य विषयों में परिवर्तन करके हिन्दी काव्य को रीतिकालीन गन्दी गलियों से निकाल प्रगति के वरदायक चारो और स्वास्थ्यप्रद मार्ग पर ला खड़ा कर दिया। अपने व्यक्तिगत प्रभाव और प्रेरणा से उन्होंने एक ऐसे कविमंडल का संगठन किया जिसने उनके पश्चात् भी उनके बताये हुये मार्ग पर चलकर उनके कार्य को आगे बढ़ाया। इनके मंडल के प्रमुख कवियों में बाबू राधाकृष्णदास, पं० प्रतापनारायण मिश्र, पं० बद्रीनारायण चौधरी (प्रेमघन), ठा० जगमोहनसिंह आदि प्रमुख हैं। बाबू राधाकृष्णदास ने शृंगार तथा भक्ति पर ही अधिक रचना की है। पं० प्रतापनारायण मिश्र ने अधिकतर समाज सुधार और देश भक्ति विषयक कवितायें लिखीं। इनकी ब्रजभाषा पर पश्चिमी अवधी का अधिक प्रभाव परिलक्षित होता है। 'प्रेमघन' जी की कवितायें भी प्रायः समाज

सुधार या देश भक्ति की भावनाओं में ओत प्रोत हैं। इस प्रकार विरर की
दृष्टि से इनकी कविताएँ नवीन विषयों से संबंधित थीं। ठाकुर जगमोहनसिंह
हिन्दी में प्राकृतिक सौन्दर्य का स्वतंत्र चित्रण करने वाले सर्व प्रथम कवि हैं।
ठाकुर साहब प्रकृति की भाँति मानव मात्र से भी उतना ही प्रेम करते थे।
उनकी कविताओं में लौकिक प्रेम का चित्रण अलौकिक भावनाओं से प्रभावित
है। अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग इनकी रचना को बड़ा ही सरस बना देता है।

भारतेन्दु मंडल के इन कवियों के पश्चात् भी नवीन ब्रजभाषा काव्य धारा
प्रवाहित होती रही। इसमें योग देने वाले कवियों में राय देवीप्रसाद पूर्ण, बा॰
जगन्नाथदास रत्नाकर, अयोध्यासिंह उपाध्याय, पं० श्रीधर पाठक, पं० रामचन्द्र
शुक्ल, पं० सत्यनारायण 'कविरत्न' तथा वियोगी हरि के नाम उल्लेखनीय हैं।

राय देवीप्रसाद पूर्ण ने प्राचीन और नवीन दोनों ही परिपाटियों पर
अत्यन्त उत्कृष्ट कविता की है। इन्होंने कालिदास के 'मेघदूत' का अनुवाद ब्रज-
भाषा में किया है। इन की ब्रजभाषा बहुत शुद्ध व्याकरण के नियमों के
अनुकूल है।

रत्नाकरजी आधुनिक ब्रजभाषा काव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। इन्होंने तीन
प्रबन्ध काव्य लिखे हैं—१. 'हरिश्चन्द्र', २. 'गंगावतरण', ३. 'उद्धवशतक'।
इनमें से 'गंगावतरण' और 'उद्धवशतक' बहुत प्रसिद्ध हैं और ब्रजभाषा काव्य
के सर्वोत्कृष्ट रत्नों में अपना स्थान रखते हैं। 'गंगावतरण' में शृंगार, वीर,
हास्य, भयानक आदि अनेक रसों का परिपाक हुआ है।

'उद्धवशतक' भाव प्रधान काव्य है। सूरदास, नंददास आदि अनेक कवियों
[द्वा]रा जिस विषय का प्रतिपादन किया जा चुका था उसी विषय में रत्नाकरजी
[न]े अनेक नवीन उद्भावनायें करके विषय का प्रतिपादन इतनी कुशलता से
[कि]या है कि उसमें नवीनत्व और रमणीयत्व दोनों ही आगये हैं।

पं० अयोध्यासिंह उपाध्यायजी ने प्राचीन परिपाटी पर 'रस कलश' की रचना
[की]। इस ग्रन्थ में सभी रसों का वर्णन बड़ी तत्परता से किया है। नायिका
[भेद] सम्बन्धी विवेचन करते हुए हरिऔधजी ने प्राचीन नायिकाओं के साथ
[जाति-प्र]ेमिका, देश-प्रेमिका, लोकसेविका आदि नवीन नायिकाओं की भी
[क]ल्पना की है।

पं० श्रीधर पाठक ने भी ब्रजभाषा में बड़ी सुन्दर एवं आकर्षक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। ये प्रकृति प्रेमी थे अतः इन्होंने प्राकृतिक सौन्दर्य के उपकरणों पर अनेक कविताएँ लिखीं। उनका ऋतुवर्णन बड़ा ही मनोरम है। पाठकजी ने कालिदास के 'ऋतु संहार' का अनुवाद भी किया। पं० रामचन्द्र शुक्ल की भी ब्रजभाषा में की गई कविताएँ भाव-पूर्ण और सरस हैं। शुक्लजी भी प्रकृति प्रेमी थे अतः उन्होंने अपनी कविताओं में प्रकृति के सुन्दर चित्र उपस्थित किये हैं। पं० सत्यनारायण 'कविरत्न' तो 'व्रज-कोकिल' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनकी कविताओं में 'भ्रमरदूत' तथा 'प्रेम कली' बहुत प्रसिद्ध हैं। ब्रजभाषा में विशुद्ध राष्ट्रीय कविताओं के ये प्रथम कवि हैं।

'कविरत्न' जी के पश्चात् इस क्षेत्र में वियोगी हरि का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने वीररस पर 'वीरसतसई' की रचना की। यह आधुनिक ब्रजभाषा का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर तथा दयावीर आदि नायकों पर कविता की गई है।

इनके अतिरिक्त आधुनिक ब्रजभाषा काव्य में दोहा शैली पर रचना करने वाले दुलारेलाल भार्गव भी अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। ला० भगवानदीन, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', पं० अम्बिकादत्त व्यास, पं० नाथूराम शंकर, पं० रूप नारायण पांडेय आदि कवियों ने भी ब्रजभाषा की पर्याप्त श्रीवृद्धि की है। यद्यपि काव्य-क्षेत्र में खड़ी बोली ने अपना एकाधिकार कर लिया है फिर भी ब्रजभाषा काव्य की परम्परा बराबर विकसित हो रही है।

आधुनिक हिन्दी (खड़ी बोली) काव्य-धारा का विकास

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी-काव्य-धारा को हम तीन युगों में विभाजित कर सकते हैं—१. भारतेन्दु युग, २. द्विवेदी युग, ३. वर्तमान युग।

भारतेन्दु युग—यद्यपि 'खड़ी बोली' की कविता प्रचार की दृष्टि से नवीन है फिर भी प्रयोग की दृष्टि से यह प्राचीन रही है। हिन्दी के अति दीर्घकालीन इतिहास में खड़ी बोली कविता की परम्परा का आरम्भ खुसरो की पहेलियों से प्राप्त होता है—

'एक नारी है पी की प्यारी। यह अचरज है मैं को मारी।
जो कोई उसको हाथ लगावे। मरना जीना दुरत बतावे।

कबीर की कविताओं में भी हमें खड़ी बोली के दर्शन होते हैं—

कद्दू काट मृदंग बनाया, नीबू काट मँजीरा।
पाँच तरोई मंगल गावें, नाचे बालम खीरा॥

इस उदीयमान खड़ी बोली का प्रसंग हमें रहीम की कविताओं में भी प्राप्त होता है—

कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखन वाला चाँदनी में खड़ा था॥
कटितट बिच मेला पीत सेला नवेला।
अलि बन अलबेला यार मेरा अकेला॥

भूषण के वीररसात्मक काव्य में भी हमें खड़ी बोली का तीव्र स्वर सुनाई देता है—

पंच हजारिन बीच खड़ा किया, मैं उसका कुछ भेद न पाया।
'भूषन' यों कहि औरंगजेब उजीरन सों बेहिसाब रिसाया॥
कम्मर की न कटारी दई, इसलाम ने गोसल खाना बचाया।
जोर सिवा अनरत्थ, भली भई हत्थ हथ्यार न आया॥

इन के अतिरिक्त ताज नामक मुसलमान कवियित्री की निम्नलिखित कविता में भी खड़ी बोली का प्रयोग हुआ है—

सुनो दिल जानी मेरे दिल की कहानी तुम,
दस्त ही बिकानी बदनामी भी सहूँगी मैं।
देव पूजा ठानी, मैं निवाज हू भुलानी,
तजे कलमा कुरान साड़े गुनन गहूँगी मैं।
साँवला सलोना सिर ताज सिर कुल्ले दिये,
तेरे नेहदाग में निदाघ हो दहूँगी मैं।
नन्द के कुमार कुरबान ताँडी सूरत पै,
ताँड नाल प्यारे हिन्दुआनी हो रहूँगी मैं॥

इन भिन्न-भिन्न युगीन अवतरणों से यह सिद्ध होता है कि खड़ी बोली कोई स्वप्नलोक की भाषा नहीं थी, लोक प्रचलित भाषा थी। वह दक्षिण में रायगढ़ तक भूषण द्वारा पहुँचाई गई थी, यह हिन्दी के राष्ट्रभाषात्व का भी प्रमाण है। हिन्दी काव्य क्षेत्र में ब्रजभाषा की मान्यता होने के कारण शताब्दियों तक खड़ी बोली की पूछ न हुई। किन्तु नवयुग के आरंभ और अंग्रेजी राज्य की स्थापना से देश में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये जिनका प्रभाव हिन्दी साहित्य पर भी पड़ा। जिसके फलस्वरूप क्रान्ति युग के साहित्यिक अग्रदूत भारतेन्दु में सबसे पहले यह चेतना जाग्रत हुई कि खड़ी बोली को कविता का माध्यम बनाना चाहिये।

भारतेन्दु की इस नवचेतना के फलस्वरूप ही जीवन और कविता का युग युग का विच्छिन्न सम्बन्ध पुन. स्थापित हुआ। काव्य का स्वर, भाव, रंग, सभी कुछ बदला। १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से कविता में क्रान्ति की प्रवृत्ति प्रस्फुटित हो गई। भारतेन्दु इस क्रान्ति के स्रष्टा और उनके सहयोगी साहित्यकार उसके पोषक हुए।

क्रान्ति युग के स्रष्टा भारतेन्दु ने खड़ी बोली में अपनी कुछ रचनाएँ प्रस्तुत कीं। उदाहरण के लिये उनकी निम्नांकित कविता देखिये :—

वरषा सिर पर आगई, हरी हुई सब भूमि।
बागों में झूले पड़े, रहे भ्रमरगण भूमि॥
छोड़ छोड़ मरजाद निज, चढ़े नदी नद नाल।
लगे नाचने मोर बन, बोने कीर, मराल॥
खोल-खोल छाता चले, लोग सड़क के बीच।
कीचड़ में जूते फँसे, जैसे अघ में नीच॥

भारतेन्दु के सहयोगी पंडित बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भी खड़ी बोली में काव्य रचना की। उनकी खड़ी बोली कविता का नमूना देखिये—

हुआ प्रबुद्ध वृद्ध भारत निज आरत दशा निशा का।
समझ अन्त अतिशय प्रमुदित हो तनिक तब उसने ताका॥
× × × ×

विनोद भी इनकी कविताओं में प्रचुरमात्रा में मिलता है। इनकी खड़ी बोली की रचना का एक उदाहरण देखिये :—

आँख से न आँख लड़ जाय इसी कारण से,
मित्रता की भीति करतार ने लगाई है।
नाक में निवास करने को कुटी शंकर की,
छवि ने छपाकर की छाती पै छवाई है।
कौन मान लेगा कीर-तुंड की कठोरता में,
कोमलता तिल के प्रसून की समाई है।
सैकड़ों नकीले कवि खोज-खोज हारे पर,
ऐसी नासिका की और उपमा न पाई है।

शंकरजी ने उर्दू शैली में भी काव्य रचना की है—

बुढ़ापा नातवानी ला रहा है।
जमाना जिन्दगी का जा रहा है॥
किया क्या खाक ? आगे क्या करेगा ?
अखीरी वक्त दौड़ा आ रहा है।

इस प्रकार भारतेन्दु युग के समाप्त होते-होते खड़ी बोली कविता की साहित्यिक विशेषतायें निखरने लगी थीं। फिर भी वह ब्रजभाषा के प्रभाव से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाई। खड़ी बोली भाषा का परिष्कार और सुधार द्विवेदी युग में हुआ।

भारतेन्दु युग के काव्य की विशेषतायें :—

१. इस युग के साहित्यकारों ने प्राचीन परम्परा पर रचना करते हुये भी काव्य की नवीन शैलियों की उद्भावना में विशेष योग दिया।

२. जीवन और कविता का युग-युग का टूटा सम्बन्ध पुनः स्थापित हुआ। इस युग में काव्य का स्वर, भाव तथा रंग कुछ बदल गया।

३. रीतिकाल की रूढ़िग्रस्त कविता को नखशिख नायिका भेद, रस छन्द-कार आदि वर्णन के संकुचित क्षेत्र से निकाल कर उसे व्यापकता प्रदान की।

४. देश भक्ति, राजभक्ति और समाज सुधार सम्बन्धी रचनाओं का श्रीगणेश इसी युग में हुआ। भारतेन्दु और उनके सहयोगी साहित्यकारों ने देश की समस्याओं पर कविता कर देश की दुखद स्थिति का बहुत ही मार्मिक चित्रण किया।

५. काव्य में नवीन विषयों का समावेश किया गया तथा शृङ्गार रस का परित्याग न कर उस पर नवीन ढंग से उत्कृष्ट रचनायें की गईं।

६. इस युग के कवियों का प्रेम वर्णन विलासिता की भावनाओं से ऊँचा उठा हुआ, सरल तथा स्वाभाविक है।

७. प्रकृति को आलम्बन रूप में चित्रण करने की प्रथा का प्रारम्भ भी इस युग में हुआ।

८. काव्य में सहज, सरल और स्वाभाविक भावों को उपस्थित किया गया।

९. साहित्यिक ब्रज के स्थान पर शुद्ध ब्रज भाषा के प्रयोग पर बल दिया गया। साथ ही खड़ी बोली में भी काव्य रचनाएँ की गईं।

१०. अलंकार प्रधान शैली का परित्याग कर प्रसादगुण युक्त नवीन शैली का निर्माण किया तथा रस पुष्टि पर अधिक बल दिया गया।

११. भारतेन्दु-युग में लोक-प्रचलित गीतों की शैली पर होली, कजरी, लावनी, भजन आदि कई प्रकार के गीतों को काव्य में स्थान दिया गया।

१२. सामाजिक रूढ़ियों का बहिष्कार कर काव्य में राष्ट्रीय विचारों को प्रमुखता प्रदान की गई।

१३. आश्रयदाताओं की झूंठी प्रशंसा को छोड़कर इस युग में कविता जन-जीवन के अधिक सन्निकट आ गई।

१४. काव्य-विषयों के सर्वथा नवीन होने के कारण भारतेन्दु युग की नवीन कविता में कलात्मकता का अभाव था।

द्विवेदी युग—भारतेन्दु को यदि हम हिन्दी आकाश का इन्दु मानें तो आचार्य द्विवेदी को २०वीं शताब्दी के हिन्दी साहित्य-गगन का उदीयमान आदित्य मानना चाहिये। भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने प्राचीन भाषा में भाव बदल के द्वारा कविता में एक परिवर्तन उपस्थित किया। किन्तु द्विवेदी

काल तो यथार्थतः खड़ी बोली की कविता के 'जन्म और विकास' का काव्य ही है। इस काल में नवीन हिन्दी कविता ने शैशव और बाल्य, कौमार्य और कैशोर्य की अवस्थायें पार करके यौवन के सिंहद्वार पर अपना चरण रखा।

चिर प्रतिष्ठित व्रजभाषा को काव्य क्षेत्र से अपदस्थ कर राष्ट्र की लोक भाषा (खड़ी बोली) को ही कविता की भाषा बना देने का महान अनुष्ठान पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया। वस्तुतः भारतेन्दु और द्विवेदी आधुनिक हिन्दी कविता के शंकर और भागीरथ हैं। इस कविता गंगा का अवतरण तो शंकर (भारतेन्दु) के मस्तक पर काशी में हुआ किन्तु अवतरण के पश्चात् उसे दिशा दिखाने वाले भागीरथ (पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी) ही थे।

सन् १६०० में स्थापित 'सरस्वती' पत्रिका ने हिन्दी साहित्य की महान् सेवा की। इस पत्रिका के सूत्रधार भी आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी हुये। आचार्य द्विवेदी ने साहित्यिक क्षेत्र के केन्द्र में रहकर अपने वृत्त के साहित्यकारों को अपनी प्रतिभा का बल प्रदान कर उन्हें पोषण और प्रकाश दिया जिसके फलस्वरूप हिन्दी साहित्य के सभी अङ्ग विविध प्रतिभाओं से प्रोद्भासित हो उठे। इस क्षेत्र में आचार्य द्विवेदी का कर्त्तव्य महान् है। 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रंथ' की प्रस्तावना के लेखक नन्ददुलारे बाजपेयी के ये शब्द इस सम्बन्ध में स्मरणीय हैं :—

"आचार्य द्विवेदी ने पिछले पैंतीस चालीस वर्षों के सतत परिश्रम से खड़ी बोली के गद्य और पद्य की एक पक्की व्यवस्था की और दोनों प्रणालियों द्वारा पूर्व और पश्चिम की पुरातन और नूतन स्थायी और अस्थाई, ज्ञान-सम्पत्ति सम्पूर्ण हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों में मुक्त हस्त से वितरित की जिसके लिये हम सब उनके ऋणी हैं।"

आचार्य द्विवेदी वास्तव में साहित्य-गुरु थे। उन्होंने कवियों को खड़ी बोली की कविता का पाठ पढ़ाया और बाद में आचार्य के रूप में उनका निर्देशन भी किया। हिन्दी के राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने महावीर के 'प्रसाद' को स्वीकार किया ही है। सर्व श्री कामताप्रसाद गुरु, रामचरित उपाध्याय, लोचन प्रसाद पाण्डेय, सियाराम शरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय, लक्ष्मीधर बाजपेयी, गोपालशरणसिंह आदि कवि उन्हीं के वरदान से बढ़े। श्रीयुत

ओधर पाठक, श्री हरिऔध, श्री देवीप्रसाद पूर्ण तथा पं० नाथूराम शंकर शर्मा और सेठ कन्हैयालाल पोद्दार भी उनसे प्रभावित हुये। सर्वश्री गिरिधर शर्मा, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', रामनरेश त्रिपाठी और बदरीनाथ भट्ट जी पर द्विवेदीजी का परोक्ष प्रभाव परिलक्षित होता है। श्री जयशंकर प्रसाद, श्री माखनलाल चतुर्वेदी और श्री भगवानदीन ही ऐसे कवि थे जो द्विवेदी जी के प्रभाव में न आ सके। इसके अतिरिक्त सर्वश्री माधव शुक्ल, हरिभाऊ उपाध्याय, रायकृष्णदास, मन्नन द्विवेदी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, केशव प्रसाद मिश्र, नवीनजी, गोविन्द वल्लभ पंत, गोविन्ददास आदि अनेक कवियों ने हिन्दी की इस नई कविता को बलवती बनाने में योगदान दिया।

द्विवेदी काल की कविता में वर्तमान के प्रति असन्तोष है, सृजन और निर्माण की चेतना है, भविष्य की ओर दृष्टि है। संक्षेप में भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक नवजागरण की पूर्ण प्रतिच्छाया और प्रतिध्वनि इस काल की कविता में देखी और सुनी जा सकती है।

द्विवेदी काल के कवि समाज की दुर्बलताओं के प्रति पूर्ण सजग दिखाई देते हैं। समाज की रूढ़ियों, कुरीतियों जैसे अशिक्षा, बाल-विवाह, अस्पृश्यता, साम्प्रदायिक विद्वेष, जातीय जड़ता, नैतिक अनीति, अहंभाव, धार्मिक अन्धानुसरण आदि की उन्होंने खुलकर निन्दा की है तथा जीवन को उदात्त और आदर्श बनाने की चेतावनी दी है। पीड़ित-शोषित वर्ग के प्रति मानव हृदय में करुणा जाग्रत करने के लिये यथार्थ चित्रण भी कवियों ने प्रस्तुत किये हैं।

इस प्रकार द्विवेदी युग में कविता ने अपनी सभी स्थितियाँ और अवस्थाएँ देखीं। प्रारम्भ में वह चमत्कारिक और इतिवृत्तात्मक रही, फिर वह उपदेशात्मक हुई और अन्त में भावात्मक कोटि में उसकी चरम परिणति हुई।

इस युग की काव्य भाषा व्याकरण सहित शुद्ध और परिष्कृत है। इसके अनुरूप शब्दों का प्रयोग किया गया है। अर्थ साम्य की प्रधानता ही है। इसके अतिरिक्त इस युग में कवियों की दृष्टि नवीन छन्दों की ओर भी गई। दोहा-चौपाई, सोरठा, घनाक्षरी, छप्पय, कवित्त और सवैया आदि का प्रयोग हिन्दी में बहुत हो चुका था। अतः ये छन्द लगभग छोड़ ही दिये गये। द्विवेदी जी के निर्देशानुसार संस्कृत काव्यों में प्रयोग किये गये वर्ण वृत्त नवीन हिन्दी कविता

में प्रयुक्त होने लगे। मात्रिक छन्द के नाना रूपों के प्रयोग भी हिन्दी में किये गये। मात्रिक छन्दों को तुकान्तहीन करके काव्य रचना भी की गई।

संस्कृत के श्रेष्ठ-सुन्दर प्रकृति-वर्णन भी संस्कृतज्ञ कवियों के द्वारा हिन्दी में प्रस्तुत किये गये। इनसे हिन्दी कवि के सामने प्रकृति-वर्णन की विविध शैलियाँ प्रस्तुत हुईं। इस युग में अंग्रेजी, संस्कृत और बंगला की पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद भी हुये जिनसे हिन्दी कविता को अभूतपूर्व लाभ प्राप्त हुआ। संस्कृत काव्य के अनुशीलन और अनुकरण से हिन्दी-कविता में सूक्ति-साहित्य की वृद्धि हुई। विश्व कवि रवीन्द्रनाथ की गीतांजलि की चिन्तन धारा से प्रेरणा ग्रहण कर हिन्दी में रहस्य का प्रचार हुआ। संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला और अन्य साहित्यों के अध्ययन से हिन्दी के कवियों ने भावाभिव्यक्ति के नवीन ढंग सीखे।

संक्षेप में इस युग में नवीन छन्द, नवीन भाव तथा नवीन अर्थों का आगमन हिन्दी कविता में हुआ। शब्द-सम्पत्ति बढ़ी, नवीन-नवीन प्रवृत्तियाँ तथा नयी मान्य धारायें नवीन हिन्दी कविता को प्राप्त हुई और वह समृद्धिशाली बन गई।

द्विवेदी युग के काव्य की विशेषतायें :—

१. इस युग में खड़ी बोली अधिक मजाक एवं प्रतिष्ठित हो गई और वह गद्य और पद्य दोनों में ही व्यवहृत होने लगी।

२. दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया आदि छन्दों का लगभग बहिष्कार हुआ और उनके स्थान पर वर्ण वृत्तों तथा कुछ नवीन छन्दों का व्यवहार होने लगा।

३. सामाजिक विषयों तथा बालविवाह, विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा, अछूतोद्धार आदि पर काव्य रचना की गई।

४. इस युग की धार्मिक कविता में कोई उपदेशात्मक प्रवृत्ति नहीं है वरन् उसमें उदारता और व्यापक मनोदृष्टि, विश्वप्रेम और जनसेवा की भावना है।

५. इस युग की देश भक्ति की कविताओं में एकता और आशापूर्ण उत्साह है। किसानों की गरीबी, अशिक्षा, विवशता और दुर्दशा के प्रति सहानुभूति है। इसके अतिरिक्त म..विचार की धार्मिक भावना है।

६. भारतेन्दु युग के प्रकृति वर्णन में केवल परंपरा का निर्वाह किया गया है किन्तु इस में प्रकृति के विभिन्न रूपों पर बड़ी रोचक कवितायें की

हैं। द्विवेदी काल के कवियों में प्रकृति के प्रति सच्चा प्रेम है इसीलिये वे तन्मय होकर प्राकृतिक शोभा का अपूर्व वर्णन करते हैं।

७. इस युग की कविता जन जीवन के अधिक सन्निकट है और जनतादं का प्रतिनिधित्व करने में पूर्ण रूप से सचेष्ट है।

८. भारत के प्राचीन गौरव, वर्तमान दुरावस्था तथा आशापूर्ण भविष्य के चित्र भी इस युग में प्रस्तुत किये गये।

९. नवीन-नवीन प्रवृत्तियाँ तथा नूतन भाव धाराएँ हिन्दी कविता को मिलीं जिससे वह श्रीसम्पन्न हो गई।

वर्तमान युग :—वैसे तो हिन्दी काव्य में नवयुग का आरंभ भारतेन्दु के प्रादुर्भाव के साथ ही होता है किन्तु तत्कालीन परिस्थितियों के कारण नवयुग की काव्य-धारा उस समय पूर्ण वेग से प्रवाहित न हो सकी। द्विवेदी युग में इस काव्य-धारा को सँभलने का अवसर मिला और वर्तमान युग में वह पूर्ण रूप से विकास के पथ पर है।

इस युग में कविता की विभिन्न धारायें प्रवाहित हुई हैं। यथा :—

छायावादी काव्य-धारा
रहस्यवादी काव्य-धारा
हालावादी काव्य-धारा
प्रगतिवादी काव्य-धारा
प्रयोगवादी काव्य-धारा

छायावादी काव्य-धारा—छायावाद, आधुनिक हिन्दी काव्य की एक विशेष प्रवृत्ति है। इसके मूल में वैयक्तिकता का दृष्टिकोण है। छायावाद अलंकृत प्रभावशाली काव्यशैली है जिसमें कवि किसी वस्तु, व्यक्ति या घटना का स्थूल वर्णन न करके उसके द्वारा पड़े हुये अपने वैयक्तिक-प्रभाव के रूप में विश्लेषण करता है। छायावाद के दो पक्ष हैं—(१) स्थूल जगत या वस्तु की सूक्ष्म तथा आन्तरिक स्थितियों का विश्लेषण, (२) सूक्ष्म अनुभूतियों एवं भावनाओं का साकार, सजीव चित्रण।

स्थूल व्यक्तित्व की अपेक्षा उसके रूप, रंग, गुण की छाया का वर्णन होने

है इसका नाम छायावाद हुआ। विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से छायावाद की विभिन्न परिभाषायें दी हैं। उनमें से कुछ यहाँ उद्धृत की जाती हैं :—

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—"रहस्यवाद के अन्तर्गत रचनाएँ पहुँचे हुये पुराने संतों या साधकों की उस वाणी के अनुसरण पर होती हैं जो तुरीयावस्था या समाधि दशा में नाना रूपकों के रूप में उपलब्ध आध्यात्मिक ज्ञान का आभास देती हुई मानी जाती थीं। उस रूपात्मक आभास को यूरोप में 'छाया' कहते थे। इसी से बंगाल में ब्रह्मसमाज के बीच युक्त वाणी के अनुकरण पर जो आध्यात्मिक गीत या भजन बनते थे वे छायावाद कहलाने लगे।"

गंगाप्रसाद पाण्डेय—"विश्व की किसी वस्तु में एक अज्ञात सप्राण छाया की झाँकी पाना अथवा उसका आरोप करना ही छायावाद है।"

जयशंकर प्रसाद—"कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश विदेश की सुन्दरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया।"

डा० रामकुमार वर्मा—"परमात्मा की छाया आत्मा में पड़ने लगती है और आत्मा की छाया परमात्मा में। यही छायावाद है।"

डा० नगेन्द्र—छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव पद्धति है; जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है। जिस प्रकार भक्ति काव्य जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण या और रीति काव्य एक दूसरे प्रकार का उसी प्रकार छायावाद भी एक विशेष प्रकार का भावात्मक दृष्टिकोण है।" इसके अतिरिक्त डा० नगेन्द्र छायावाद को 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' मानते हैं।

डा० नन्ददुलारे वाजपेयी—"मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भाव मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।"

डा० देवराज—"छायावाद गीति काव्य है, प्रकृति काव्य है, प्रेम काव्य है।"

इन सब परिभाषाओं से छायावाद के सम्बन्ध में अनेक तथ्य ज्ञात हो जाते

हैं यथा—छायावाद और रहस्यवाद एक हैं। छायावाद प्रकृति में मानव जीवन का प्रतिबिम्ब देखता है अर्थात् प्रकृति का मानवीकरण करता है। छायावाद एक भावात्मक दृष्टिकोण है। छायावाद प्रकृति में आध्यात्मिक सौन्दर्य का दर्शन करता है। छायावाद में प्रेम का चित्रण होता है। छायावाद में प्रकृति चित्रण होता है। छायावाद में गीति तत्व की प्रमुखता होती है। छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है।

संक्षेप में यों कहा जा सकता है कि छायावादी कवि प्राकृतिक दृश्यों या वस्तुओं से रहस्यात्मक प्रेरणा ग्रहण कर उसे काव्य के रूप में ढाल देता है।

छायावाद का आविर्भाव

रीतिकाल में शृङ्गार रस पर कविता औचित्य की सीमा से अधिक हो चुकी थी, अतः द्विवेदीकाल के कवियों ने शृङ्गार रस का एकदम बहिष्कार कर दिया और इतिहास या पुराणों सम्बन्धी प्राचीन कथाओं के वर्णन द्वारा समाज तथा साहित्य में नवीन आदर्शों की स्थापना का प्रयत्न किया। परन्तु सुधारवादी प्रवृत्तियों की प्रधानता के फलस्वरूप इनमें रसों का सम्यक परिपाक न हो सका। इस काल की कविताओं में हृदय पक्ष का अभाव रहा एवं शुष्क बुद्धिवाद का आधिक्य है। इसीलिये कविता में अक्खड़ता, नीरसता और इति-वृत्तात्मकता आदि की प्रबलता हो गई। कविता को छन्द आदि के बन्धनों में जकड़ने का प्रयत्न किया गया, और सृष्टि के बाह्य तत्वों पर इतना अधिक लिखा गया कि कवि का हृदय अपनी अंतरतम भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिये व्याकुल हो उठा। इतिवृत्तात्मकता के बन्धन असह्य हो गये, वर्णन प्रधान स्थूल शैली के प्रति कवि ने विद्रोह कर नवीन मार्ग अपनाने का दृढ़ संकल्प किया। शुष्क बौद्धिकता का परित्याग कर कवि ने नवीन छन्दों और नवीन भावों का आश्रय ग्रहण कर साहित्य में पुनः सौन्दर्य की प्रतिष्ठा की। प्रेम की अभिव्यक्ति के लिये संयोग तथा वियोग के गीतों की एक बार फिर रचना की। प्राचीन गाथाओं को छोड़कर कवि ने अपने सुख दुख का गायन प्रारम्भ किया। काल्पनिक नायिकाओं को छोड़ अपने आप को नायक और अपनी प्रेयसी को नायिका के रूप में चित्रित किया। इस प्रकार हिन्दी काव्य में शताब्दियों की परम्परा के विरुद्ध वैयक्तिकता का प्रवेश हुआ। वैयक्तिकता का अर्थ यह है कि

कवि की वे भावनाएँ जो स्वच्छन्द रूप से समाज में व्यक्त नहीं की जा सकती हैं, प्रकृति की कल्पनाओं के साथ साहित्य में व्यक्त की गई। इस दृष्टि से प्रकृति को प्रधानता दी गई। प्रकृति के विभिन्न उपादान प्रतीक रूप में प्रयुक्त किये गये। पावस, मेघ, विद्युत, नदी, सागर, लहर, उषा, संध्या, नक्षत्र, चन्द्र, रश्मि, ज्योत्स्ना, अंधकार, तरु, लता, कलिका, पतझड़, बसन्त, पराग, मलयानिल, भ्रमर, कोकिल, पपीहा, हिम, ओसकण आदि से कवि प्रेरणा ग्रहण करने लगा। अस्तु काव्य में छायावाद का प्रचलन होने लगा। संक्षेप में छायावाद के आविर्भाव की यही कथा है।

छायावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ

छायावादी काव्य में निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ प्रधान रूप से पाई जाती हैं:—

१. सौन्दर्य भावना।
२. शृङ्गार अथवा प्रेम की भावना।
३. करुणा की विवृत्ति।
४. प्रकृति-प्रियता।
५. जीवन दर्शन।

सौन्दर्य भावना—मानव प्रत्येक सुन्दर वस्तु के साथ अपने हृदय के रागात्मक सम्बन्ध को स्थापित करने के लिये सदैव उद्यत रहता है। सौन्दर्य-प्रियता उसका सहज गुण है। बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य की ओर वह विशेष रूप से आकर्षित होता है। प्रसाद का भावुक हृदय प्रकृति में नारी रूप का मनोरम दर्शन करता है—

उठ-उठ री लघु लोल लहर,
करुणा की नव अंगराई-सी।
इस सूने तट पर छिटक-छहर,
शीतल, कोमल, चिर कम्पन-सी।
दुर्ललित हठीले बचपन-सी,
तू लौट कहाँ जाती है री!

निराला भी इसी सौन्दर्य भावना से प्रभावित होकर कहते हैं—

पहचाना अब पहचाना!

हाँ, उस कानन में लिपे हुये तुम !
चूम रहे थे झूम-झूम उषा के स्वर्ण कपोल ।
अठखेलियाँ तुम्हारी प्यारी-प्यारी !
व्यक्त इशारे से ही सारे बोल मधुर अनमोल ।

२. शृङ्गार अथवा प्रेम भावना—शृङ्गार अथवा प्रेम के क्षेत्र में छाया-वादी कलाकार लौकिकता से ऊपर उठ जाता है। वह आश्चर्यचकित होकर अपनी प्रिय वस्तु को देखने लगता है। यहीं पर सृष्टि के प्रति उसका रागात्मक प्रबल हो जाता है और वह कह उठता है—

'तड़ित-सा' सुमुखि ! तुम्हारा ध्यान ।
प्रभा के पलक मार, उर चीर,
गूढ़ गर्जन कर जब गम्भीर,
मुझे करता है अधिक अधीर,
जुगुनुओं से उड़ मेरे प्रान,
खोजते हैं तब तुम्हें निदान । —पंत

छायावादी कलाकार प्रकृति के नानारूपों में अपने ही हृदय की प्रतिच्छाया देखता है। उसका हृदय शृङ्गार-दर्शन के लिये आकुल हो उठता है—

कलियो, यह अवगुंठन खोलो ।
ओस नहीं है, मेरे आँसू—
से ही मृदु पद धोलो ॥
कोकिल-स्वर लेकर आया है,
यह अशरीर समीर ।
सुखमय सौरभ आज हुआ है,
पंच बाण का तीर ॥
—रामकुमार वर्मा

३. करुणा की विवृति—मनुष्य के हृदय की सुकुमारता, कोमलता, सुन्दरता, विनम्रता आदि उदात्त वृत्तियों की अभिव्यक्ति हृदय की करुण स्थिति में ही संभव होती है। करुणा के बिना सम्पूर्ण जीवन ही नीरस है। करुणा

ही एक ऐसी वृत्ति है जो विश्व के समस्त व्यापारों के प्रति आकर्षण उत्पन्न करती है। अपने जीवन के एकांत संगीत में छायावादी कवि भी करुणा को ही अपनी सहचरी मानता है। वह अपने हृदय की शून्यता को अवकाश के रूप में पाता है और अपनी आहों की धूम्र-राशि के रूप में बादलों को देखता है—

नभ क्या है? मेरा हृदय शून्य, फैला अतिशय सहृदय विशाल,
आहों से उत्थित धूम्र-राशि बन गई भयानक जलद-जाल।

प्रसादजी अपने करुणा-कलित हृदय की विकल रागिनी को सुनते हैं और हाहाकार के स्वरों में गर्जना करने वाली असीम वेदना को अपनी व्याकुलता के क्षणों में कह उठते हैं:—

अभिलाषाओं की करवट, फिर सुप्त व्यथा का जगना।
सुख का सपना हो जाना, भीगी पलकों का लगना॥

४. प्रकृति प्रेम—छायावाद में प्रकृति प्रेम का विशेष महत्व है। कवि प्रकृति के माध्यम से ही अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति किया करता है। प्रकृति के साथ वह अपनी आत्मा का तादात्म्य प्राप्त करता है। इसलिये प्रकृति के प्रति उसका मोह हो जाता है जिसे वह किसी मूल्य पर भी नहीं छोड़ना चाहता। पंत की इन पंक्तियों को देखिये:—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले तेरे बाल जाल में—
कैसे उलझा दूँ लोचन,
भूल अभी से इस जग को।

छायावादी कवि प्रकृति में मानव-व्यापारों का भी आरोप करता है—

अपने ही सुख से चिर चंचल,
हम खिल खिल पड़ती हैं प्रतिपल,
जीवन के फेनिल मोती को
ले-ले चल करतल में टलमल।

छू-छू मृदु मलयानिल रह-रह
करता प्राणों को पुलकाकुल,
जीवन की लतिका में लह-लह
विकसा इच्छा के नव-नव दल।

यहाँ कवि ने लहरों द्वारा उस व्यक्ति का चित्र उपस्थित किया
ही सुख में निमग्न है।

५. **जीवन दर्शन**—जीवन से अलग काव्य की स्थिति नहीं
में जीवन की ही मौलिक प्रवृत्तियों की उद्भावना होती है, जिससे वह
दूर नहीं जा पाता है। छायावादी कवि इस तथ्य को अनुभव करने
में जीवन-दशाओं का बड़ा सुन्दर समन्वय करता है। जीवन में क्या है
सुख-दुख का एक विचित्र मोहक सम्मिश्रण। इसी तथ्य को पंत ने इन
में व्यक्त किया है—

यह सांझ-उषा का आँगन, आलिंगन विरह मिलन का,
चिरहास-अश्रुमय आनन, रे इस मानव जीवन का। —

जीवन के इस तथ्य को महादेवी जी ने भी अपनी निम्न पंक्तियों में प्र
किया है :—

मैं नीर भरी दुख की बदली,
विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही,
उमड़ी कल थी, मिट आज चली।

जीवन की क्षण भंगुरता का परिचय इससे बढ़कर और कौन दे सकता है।
इस प्रकार छायावादी कवियों ने अपनी रचनाओं को व्यापक अनुभूति,
शब्द-सौष्ठव, सुन्दर कल्पनिक चित्र-विधान तथा तन्मय कारिणी भाव धारा
प्रदान की। जिस प्रकार, समुद्र में समय-समय पर अनेकों
है उसी प्रकार साहित्य-सागर में भी
छायावाद

छायावादी काव्य की विशेषताएँ

काव्य में सौन्दर्य की प्रतिष्ठा—छायावादी कवि प्रत्येक वस्तु में सौन्दर्य की अनुभूति करता है और उसके प्रति अपनी स्वाभाविक-व्याकुलता की अभिव्यक्ति करता है।

दुःखवाद—छायावादी कविता में करुणामूलक दुःख, निराशा आदि की अनुभूतियों का विराट् चित्रण प्राप्त होता है। कवि बाह्य जगत में अशान्ति को व्याप्त जान अपने अन्तर में शान्ति की खोज करता है।

शृङ्गार वर्णन—छायावादी काव्य में शृंगार वर्णन कभी रहस्यात्मक रूप में अध्यात्मकवाद की केंचुली को ओढ़ कर और कभी लौकिक रूप में हमारे सामने आता है। अव्यक्त तथा अमूर्त आलम्बनों को अपनाने के कारण उसमें अस्पृश्यता आ गई है।

प्रकृति-प्रेम—छायावाद में प्रकृति का विशेष महत्त्व है। प्रकृति के साथ कवि अपनी आत्मा का तादात्म्य पाता है। छायावादी काव्य में प्रकृति वर्णन आलम्बन रूप में हुआ है। कवि ने प्रकृति के मानव-व्यापारों का आरोप कर उसे सजीव और संवेदनशील चित्रित किया है।

व्यक्तिवाद—छायावादी काव्य में कवि ने अपने व्यक्तित्व को, अपने सुख दुख को तथा अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों को अपने काव्य का विषय बनाया है। राजनैतिक परिस्थितियों ने भी व्यक्ति की स्वतन्त्रता को स्थापित किया। फलस्वरूप काव्य में व्यक्ति का प्राधान्य होने लगा।

आध्यात्मिकता—छायावादी काव्य में अध्यात्मवाद की अभिव्यक्ति विभिन्न रूप से हुई है। प्राचीन रहस्यवादी हिन्दी कवियों के साहित्य, विश्व कवि रवीन्द्रनाथ की गीताञ्जलि तथा अंग्रेजी काव्य के भावयोगी कवियों के साहित्य ने छायावादी कवियों को विशेष सहयोग दिया है। छायावादी काव्य पर भारतीय और यूरोपीय दर्शन का प्रभाव है। इसीलिए उसमें कहीं अद्वैतवाद के दर्शन होते हैं तो कहीं भक्तिपूर्ण आध्यात्मिकता के।

नवीन छन्द—छायावादी काव्य में मुक्तक छन्द तथा अतुकान्त छन्दों का प्रयोग किया गया। इसके अतिरिक्त विभिन्न मात्रिक छन्दों को मिला कर नवीन छन्द भी बनाए गये।

५२६०६

अंग्रेजी काव्य के सौनेट और बंगला के 'प
में प्रयुक्त हुए।

नवीन अलंकार—अंग्रेजी, फ्रैंच आदि यूरो
परिणामस्वरूप छायावादी काव्य की अलंकारिक शैल
मूर्त के लिए अमूर्त उपमानों का सफल प्रयोग हुआ
मानवीकरण अलंकारों को छायावादी काव्य में विशेष

भाषा—इस युग में खड़ी बोली पर्याप्त प्रौढ़ता सम्पन्न हो
युग की कर्कशता नहीं रही थी। छायावादी कवियों ने
रूप व्यंजक शब्दावली द्वारा भाषा को अधिक सशक्त एवं

रहस्यवादी काव्यधारा

छायावाद और रहस्यवाद की एकता इनके जन्म के स
ये भिन्न-भिन्न रूप-रंग रेखा के बाद है। दोनों में समान
सीमा-रेखायें मिलती हैं। कभी-कभी ये दोनों एक हो जाते हैं,
क्षेत्र अलग-अलग हैं।

छायावाद पर आध्यात्मिकता का आवरण डालकर जब क
की अभिव्यक्ति करता है तभी रहस्यवाद की सृष्टि हो जाती है।
है छिपा हुआ। विश्व का सबसे बड़ा रहस्य वह परम शक्ति है जि
का निर्माण किया है। रहस्यवाद का सम्बन्ध विश्व की इसी र
से है। छायावाद की भाँति रहस्यवाद के सम्बन्ध में भी विद्वानों
परिभाषायें प्रस्तुत की हैं। रहस्यवाद की परिभाषा आचार्य शुक्ल ने
की है—

"चिन्तन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, वही भावना के क्षेत्र में
वाद है।"

डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार "रहस्यवाद आत्मा की उस अन्तर
का प्रकाशन है जिसके द्वारा वह अनन्त सत्ता के साथ अपना शान्त और नि
सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है और वह ...
बंधने में कोई अन्तर नहीं ...

भावुक मन किसी परम रम्य अनन्त रमणीय (पुरुष या नारी) से आत्म-तादात्म्य की, अर्थात् उसके प्रति जिज्ञासा, विस्मय, सम्मोहन, प्रणयानुराग, आसक्ति, आदि प्रेमिक अनुभूतियाँ करने लगता है तो वहाँ 'रहस्यवाद' के क्षेत्र की सीमा आ जाती है। इस प्रकार छायावाद और रहस्यवाद के सीमांत मिल जाते हैं। छायावाद से आगे की भाव-भूमि 'रहस्यवाद' है।"

और भी

"जब कवि प्रकृति के चेतनत्व या मानवत्व में किसी परम चेतन, परम सुन्दर की छाया देखने लगता है या प्रकृति के विविध रूप-व्यापारों के माध्यम से अपने और उस परोक्ष सत्ता के तादात्म्य की व्यंजना करने लगता है तो छायावाद की भूमि छूट जाती है और 'रहस्यवाद' का आलोक-लोक आ जाता है।" अस्तु—

रहस्यवाद आत्मा और परमात्मा अथवा ससीम और असीम के चिरन्तन-अद्वैत से लेकर उनके विरह-प्रेम मिलन की अनुभूतियों का लोक है।

श्री परशुराम चतुर्वेदी ने रहस्यवाद की परिभाषा देते हुए लिखा है—"रहस्यवाद शब्द काव्य की एक धारा विशेष को सूचित करता है। वह प्रधानतः उसमें लक्षित होने वाली उस अभिव्यक्ति की ओर संकेत करता है जो विश्वात्मक सत्ता की प्रत्यक्ष, गम्भीर एवं तीव्र अनुभूति के साथ सम्बन्ध रखती है।

रहस्यवाद की एक अन्य परिभाषा इस प्रकार है—"अलक्ष्य ब्रह्म को लक्ष्य करने के लिए दार्शनिक अद्वैतवाद के जिस सिद्धान्त पर पहुँचता है भावुक कवि मस्तिष्क से न उलझ कर हृदय की सहृदयता से प्रकृति के नाना रूपों से उसी अव्यक्त ब्रह्म की झाँकी पाता है।

इन परिभाषाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि काव्य में आत्मा और परमात्मा के प्रेम-सम्बन्ध की अभिव्यक्ति को ही 'रहस्यवाद' कहते हैं।

रहस्यवाद के कई भेद हैं। अंग्रेज विद्वान् स्पर्जन के अनुसार रहस्यवाद के चार भेद हैं—

१. प्रेम और सौन्दर्य सम्बन्धी रहस्यवाद।
२. दर्शन सम्बन्धी रहस्यवाद।
३. प्रकृति सम्बन्धी रहस्यवाद।

४. धर्म और उपासना सम्बन्धी रहस्यवाद।

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने रहस्यवाद के दो भेद बताए हैं—(१, ...नात्मक रहस्यवाद, और (२) भावात्मक रहस्यवाद। कुछ आलोचकों ने 'साहित्यिक रहस्यवाद' की भी चर्चा की है। किन्तु ये भेद कोई निश्चित नहीं हैं।

रहस्यवाद की मुख्यतः चार अवस्थाएँ होती हैं—पहली अवस्था में सा... की परम सत्ता के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होती है। दूसरी अवस्था में आत्मचिन... दार्शनिक ग्रन्थों के अध्ययन अथवा गुरु के उपदेश से उस परम शक्ति में सा... का दृढ़ विश्वास हो जाता है। उसके बाद साधक परमात्मा की ओर अधिक आकर्षित होकर उसके प्रेम और विरह का अनुभव करने लगता है। यह रहस्यवाद की तीसरी अवस्था है। चौथी अवस्था में रहस्यवादी परम शक्ति का साक्षात्कार अपने हृदय में करने लगता है।

जब तक साधक उस परम शक्ति से अपरिचित रहता है तब तक उसकी सम्पन्न अद्भुत क्रियाओं के प्रति एक विस्मय का-सा भाव उत्पन्न होता रहता है, किन्तु जब वह उससे कुछ-कुछ परिचित-सा होने लगता है तब कुतूहल की भावना उत्पन्न होती है। यथा—

शून्य नभ में उमड़ जब दुख भार-सी,
नैश तम में सघन छा जाती घटा।
बिखर जाती जुगनुओं की पाँति भी,
जब सुनहले आँसुओं के हार-सी।
तब चमक जो लोचनों को मूँदता,
तड़ित की मुस्कान में वह कौन है? —महादेवी वर्मा

महादेवी अपनी कुतूहल-मिश्रित-जिज्ञासा उस परोक्ष के प्रति निम्न शब्दों [में व्यक्त] करते हैं :—

हे अनन्त रमणीय कौन तुम?
यह मैं कैसे कह सकता।
कैसे हो? क्या हो? इसका तो
भार विचार न सह सकता।

मानव में इतनी सामर्थ्य कहाँ जो 'कौन' और 'क्या' का उत्तर दे सके। प्रकृति की क्रियाशीलता देखकर ऐसा भास अवश्य होता है कि इस सृष्टि का संचालन कर्त्ता निश्चय ही कोई है।

'कौन' प्रश्न का उत्तर जैसे-जैसे मिलने लगता है वैसे-वैसे अनुभूति गहरी होती जाती है। साधक उस परोक्ष सत्ता के व्यापकत्व का अनुभव करने लगता है। उसकी सर्वव्यापकता ही में उसका महत्व निहित है। महत्व का ज्ञान हो जाना मानों अपने को उसी में विलीन करना है। कबीर ने कहा है :—

लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल॥

उस अनन्त रमणीय सत्ता की शक्ति विश्व के अणु-अणु में व्याप्त है। समस्त प्रकृति उसी से ओत प्रोत है। वह विराट यद्यपि प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता किन्तु यह निश्चय है कि मानव को सुख-शांति और संतोष उसी के आश्रय में मिल सकता है—

अब तो यह विश्वास जम गया—
कि बस यहीं है शान्ति।
नहीं तुम्हारे द्वारे है—
इस जीवन का कल्याण।
खड़े हम इसी लिये अनजान। —'नवीन'

उस विराट सत्ता के महत्त्व का अनुभव प्राप्त होते ही मानव का मन उसके दर्शन के लिये मचल उठता है :—

कौन धन बसयि मदेस,
के मो नाहि कइयि उ देस। —विद्यापति

साधक अपने प्रियतम को देखने का प्रयत्न करता है। वह बार बार सोचता है कि क्या प्रिय आने वाले हैं—

नयन श्रवण मय नयनमय,
आज हो रही कैसी उलझन,
क्या प्रिय आने वाले हैं ! —महादेवी वर्मा

साधक प्रियतम से आने की प्रार्थना करता है। दर्शन की अभिलाषा और तेजस्वी हो जाती है :—

जो तुम आ जाते एक बार
कितनी करुणा, कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग
गाता प्राणों का तार तार
उन्माद भरा अनुराग राग
आँसू धोते वे पद पखार
जो तुम आजाते एक बार —महादेवी व

सौन्दर्य की अनुभूति होने पर साधक में तल्लीनता आ जाती है—

बिजली माला पहनें फिर
मुसकाता सा आगन में
हाँ कौन बरस जाता था,
रस बूँद हमारे मन में! —प्रसाद

विरह के कारण प्रेम सम्बन्ध और दृढ़ हो जाता है। इसीलिये साधक प्रियतम के विरह में गीत गाया करता है—

नित जलता रहने दो तिल-तिल
अपनी ज्वाला में उर मेरा।
उसकी विभूति में आकर
अपने पद-चिन्ह बना जाना। —महादेवी वम

इस प्रकार तिल-तिल जलते हुये अनन्त साधना के पश्चात् उस परमतत्त्व की प्राप्ति हो जाती है तब अज्ञान का अन्धकार दूर हो जाता है और साधक को आत्म ज्ञान प्राप्त हो जाता है। आत्मज्ञान प्राप्त होते ही आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है उस समय उसकी स्थिति उस नदी के समान होती है जो अपने को पवित्र समुद्र में विलीन कर देती है। उसके पश्चात् न नदी का अस्तित्व रहता है और न जल का। केवल उदधि ही रह जाता है।—

वह कल-कल नादिनी ह्लादिनी प्रकट कर रही निज आह्लाद।
पल में मिलन एक पद पर है, पावन प्रेमोदधि प्रासाद

पट खुल गये और दोनों ही, हुए एक अन्तर्पट आये।
फिर क्या हुआ ? यह न पूछो, बस कौन कह सका वह संवाद ॥

आत्मा के परमात्मा में विलय हो जाने पर फिर उसके सम्बन्ध में कोई क्या कह सकता है। उस अनन्त सत्ता में लीन हो जाना ही साधक का परम और अन्तिम लक्ष्य है। इस स्थिति पर पहुँचते ही साधक आनन्द-विभोर हो जाता है। अपने उस आनन्द को वह जिन शब्दों के द्वारा लोक में वितरित करता है वही रहस्यवादी काव्य है।

इस धारा के प्रमुख कवि सर्वश्री जयशंकरप्रसाद, सुमित्रा नन्दन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा और रामकुमार वर्मा हैं। प्रसादजी ने अपनी रचनाओं में रहस्यवाद की चरम परिणति देकर प्रस्तुत हिन्दी काव्य का भारी उपकार किया है। निरालाजी हिन्दी के युगान्तरवादी कवि होने के साथ ही ओज और प्रेम के सफल कलाकार हैं। प्रकृति के सुकुमार कवि पंत की रहस्य भावना उनके कोमल व्यक्तित्व की देन है। पंत सौन्दर्य और कोमलता के अद्भुत कलाकार हैं। पंत की रहस्यवादी भावना 'वीणा', 'पल्लव' और 'गुञ्जन' में बिखरी पड़ी है। महादेवी वर्मा रहस्यवादी कवियों में अपना एक विशेष स्थान रखती हैं। महादेवी में नारी हृदय की सहज करुणा, उपनिषदों का अद्वैत ज्ञान, सांसारिक विषमताओं का अनुभव और एकांत जीवन की अनुभूति आदि सभी कुछ है। इसलिये वे अपने रहस्य गीतों में इतनी सफलता प्राप्त कर सकी हैं। डा० रामकुमार वर्मा भी हिन्दी की रहस्यमयी परम्परा के पोषक कवियों में अपना विशेष स्थान रखते हैं।

अद्वैतवादी मान्यता, दाम्पत्य प्रेम पद्धति, स्वच्छ और पवित्र प्रेम की अभिव्यक्ति, दैन्य एवं आत्म समर्पण की भावना, प्रतीकात्मकता तथा मुक्तक गीतशैली रहस्यवाद की सामान्य प्रवृत्तियाँ हैं जो प्रायः सभी रहस्यवादी कवियों में परिलक्षित होती हैं।

हालावादी-काव्यधारा

हिन्दी साहित्य में हालावादी काव्य का आविर्भाव फारसी के सुप्रसिद्ध सूफी कवि उमरखैयाम की रुबाइयों से हुआ। हिन्दी में इस काव्यधारा के

स्वागत का मुख्य कारण प्रथम महायुद्ध के पश्चात् की निराशामय वातावरण था। अँग्रेजों के दमन चक्र के कारण क्रान्तिकारियों में विक्षुब्धता फैली हुई थी और जनता का सामाजिक स्तर भी दिन पर दिन गिरता चला जा रहा था। ऐसी विषम परिस्थिति में निराश जनता के लिये ऐसे काव्य की आवश्यकता थी जिसके मद में मस्त होकर यह वर्तमान निराशा और गम को सर्वथा भूल जाय। हालावादी काव्य के प्रवर्तक श्री बच्चन और उनके सहयोगियों ने हिन्दी साहित्य में मद की ऐसी मादक धारा बहाई कि जिसमें अवगाहन करके जनता कुछ समय तक मद विभोर रह सकी। किन्तु इस मद का खुमार अधिक नहीं रहा। जनता इसके कुप्रभाव से शीघ्र ही सचेत हो गई और उसने इसे तिरस्कृत कर दिया। यही कारण है कि हालावाद तूफान की भाँति बड़े वेग से फैला और उसी वेग से ४ वर्ष की अल्पायु में ही विलीन हो गया।

हालावादी काव्यधारा ने निराश और पीड़ित जनता को उसके वर्तमान दुःखों को भुलाने के लिये वही कार्य किया जो कार्य शराब करती है। बच्चन की एक कविता देखिये :—

> मेरे पथ में आ आ करके तू पूँछ रहा है बार बार
> क्यों तू दुनियाँ के लोगों में करता है मदिरा का प्रचार ?
> मैं वाद विवाद करूँ तुझसे अवकाश कहाँ इतना मुझको,
> आनन्द करो, यह व्यंग भरी है किसी दग्ध उर की पुकार ?
> कुछ आग बुझाने को पीते यह भी कर मत इन पर संशय
> मिट्टी का तन मस्ती का मन क्षण भर जीवन मेरा परिचय ? —बच्चन

अधिक दमन उच्छृंखलता उत्पन्न करता है। अतः कवि वस्तुओं को अपने स्वयं के दृष्टिकोण से देखने लगता है। द्विवेदी युग में कवि प्रेम भावना की अभिव्यक्ति नहीं कर सकता था अतः उसी की प्रतिक्रिया स्वरूप हालावाद की सृष्टि हुई। कवि "पग-पायल की झंकार" को सुनते ही 'मधुप्यास' बुझाने के लिये मधुशाला की ओर अग्रसर हुआ। यह कह उठता है :—

> हमने छोड़ी कर की माला, पोथी पत्रा भू पर डाला
> मन्दिर-मस्जिद के बंदी गृह को तोड़ लिया कर में प्याला
> —बच्चन

कवि अपनी मधुशाला को तपोवन से भी पवित्र समझता है। बच्चनजी की इन भावनाओं को देखकर ही कुछ आलोचकों ने उन पर दूषित भावनाओं के प्रचार का दोषारोपण किया। जिसके परिणाम स्वरूप कवि को यह अनुभव हुआ कि यह सब उसके हृदय की स्पष्टता का ही कारण है। यदि वह अपनी भावनाओं की स्पष्ट अभिव्यक्ति न करता और उन्हें अन्तर में छिपाना जानता तो संसार उसे इस प्रकार अपराधी न ठहराता :—

कह रहा जग वासनामय हो रहा उद्‌गार मेरा।
मैं छिपाना जानता तो, जग मुझे साधू समझता।

श्री हृदय नारायण हृदयेशजी ने अपनी प्रखर कल्पना और लाक्षणिक अभिव्यंजना शैली द्वारा बीच-बीच में भारतीय दर्शन का गहरा पुट देकर अपने आसव के स्वाद को और भी बढ़ा दिया है—

यमुना तट पर कदम कुंज में खुली स्नेह की मधुशाला
श्याम सलोना-सा प्रिय प्यारा अधर मुरलिया का प्याला।
झूम रहे हैं पीने वाले भूल रहे हैं जगती को।
प्रणय मदोत्पादक श्रवणों में घुलकर स्वर आसव ढाला।

हृदयेशजी की एक और कविता देखिये जिसमें उन्होंने माया को मधुबाला का रूप प्रदान करके जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति निम्न शब्दों में की है—

योगी पीते, भोगी पीते, पण्डित प्याला पर प्याला।
गृही विरत बैरागी पीते, तन का होश भुला डाला॥
× × × ×
दुनियाँ में 'हृदयेश' सभी को पीनी पड़ती है आकर।
माया मधुबाला के हाथों दुनियाँ की सुख-दुख हाला॥

'नवीन' जी भी अपने को सदा नशे में ही मस्त रखना चाहते हैं। उन्हें एक क्षण का विलम्ब भी असह्य है। वे कहते हैं—

"और! और! मत पूछ, दिये जा, मुँह माँगे वरदान लिये जा।
तू बस इतना ही कह साकी और पियेजा, और पियेजा॥

कूजे दो कूजे में नवीनजी की प्यास नहीं बुझती। वे तो मन भर कर पीना चाहते हैं। इसी में वे अपना और विश्व का कल्याण समझते हैं :—

"कूजे दो कूजे में बुझने वाली मेरी प्यास नहीं।
बार-बार ला! ला! कहने का समय नहीं, अभ्यास नहीं॥
अरे बहा दे अविरल धारा, बूँद-बूँद का कौन सहारा॥
मन भर जाये, जिय उतराये, डूबे जग सारा का सारा॥

इस प्रकार हालावादी कवियों ने कुछ समय तक जनता को अपने मादक साहित्य में डुबोकर उसका मन बहलाया किन्तु साहित्य के प्रबुद्ध आलोचकों एवं साहित्यकारों की जागरूकता ने इस काव्य धारा का घोर विरोध किया जिससे यह अहंवादी भोगी, जीवन दर्शन से शून्य, निराशावादी और निष्क्रियता का प्रचार करने वाला साहित्य पानी के बुलबुले के समान क्षणिक जीवन बिताकर शीघ्र ही नष्ट हो गया। स्वयं बच्चनजी को भी यह काव्य संतोष न दे सका। मधुबाला, हाला, साकी और प्याला द्वारा उन्हें जिस तृप्ति की आशा थी वह उन्हें प्राप्त न हो सकी। कवि को हार कर अपनी काव्य-धारा का प्रवाह बदलना पड़ा। हालावादी काव्य की केवल तीन पुस्तकें 'मधुशाला', 'मधुबाला' और 'मधुकलश' ही वे हिन्दी साहित्य को प्रदान कर सके। इसके बाद अपनी प्रियतमा की याद में 'एकान्त संगीत' का गान करते हुए और उस पर 'खादी' के 'फूल' चढ़ाते हुये वे 'सतरंगिनी' के रंगों में खो गये।

इस काव्य-धारा के प्रमुख कवियों में सर्व श्री 'बच्चन', हृदयनारायण पांडेय 'हृदयेश', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पद्मकान्त मालवीय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

हालावादी काव्य की विशेषताएँ—

१. इसमें सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों के प्रति तीव्र विद्रोह है।

२. हालावादी कवि जीवन के संघर्ष से पलायन कर क्षणिक मादकता में मुक्ति की खोज करते हैं।

३. काव्य-क्षेत्र में कल्पना की ऊँची उड़ानें हैं।

४. सौन्दर्य, प्रेम और यौवन को ही ये कवि सब कुछ समझते हैं। वे इनके सब आकर्षण हैं।

५. इस काव्य में क्रियाशीलता के प्रति उदासीनता और सौन्दर्य के प्रति आसक्ति है।

६. इस काव्य में सस्ती भावुकता है।

७. यह काव्य शुद्ध रूप में एक 'खुमारी' का काव्य है जिसकी अभिव्यक्ति उन्मादक भाषा में हुई है।

८. हालावादी कवि विवशता से त्रस्त होकर अपने टूटे हुये स्वप्नों के प्रति अरण्य रोदन करते रहते हैं।

९. इस काव्य-धारा के कवि भाग्य पर ही आश्रित रहते हैं। भाग्य की प्रबलता पर उनका अटल विश्वास है।

१०. यह काव्य वैयक्तिक, अहंवादी, थोथा, लक्ष्यहीन और दर्शन से शून्य है।

प्रगतिवादी काव्य-धारा

हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद का प्रादुर्भाव वास्तव में छायावाद की सूक्ष्मता तथा पलायनवादी प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया स्वरूप ही हुआ है। कहा भी जाता है कि यदि छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है तो प्रगतिवाद सूक्ष्म के प्रति स्थूल का विद्रोह है। प्रगतिवादी कवि कविता को कल्पना लोक की वस्तु न बनाकर उसे जन-जीवन के निकट-सम्पर्क में लाना चाहता है पूँजीवाद का घोर विरोध तथा वर्ग संघर्ष और मानवतावाद का समर्थन प्रगतिवादी कवियों का मुख्य लक्ष्य है। यदि हम समस्त प्रगतिशील साहित्य पर विचार करें तो हमें उसमें निम्नलिखित भावनायें प्राप्त होंगी—

१. किसान, मजदूर, ग्रामीणों से सहानुभूति और पूँजीवादियों के प्रति घृणा।

२. रूस का यशोगान।

३. क्रान्ति की भावना।

४. रूढ़ियों का विरोध।

५. देश की तत्कालीन परिस्थितियों के प्रति जागरूकता।

६. नारी के शोषण का विरोध।

१. किसान और मजदूरों के प्रति सहानुभूति—प्रगतिवाद पूँजीवादी प्रथा का घोर विरोधी है। पूँजीवाद के पोषकों को वह समाज के शोषक समझता है और उनके विनाश की इच्छा प्रकट करता है।

"हो यह समाज चिथड़े चिथड़े शोषण पर जिसकी नींव पड़ी।
इस प्रथा के पोषक सूदखोर महाजन, जमींदार और व्यापारी
हैं। प्रगतिवादी कवि इनके प्रति घृणात्मक भाव रखता है।—

"यह राज बाज जो सधा हुआ है इन भूखे कंगालों
इन मासागरों की नींव पड़ी है भिन्न-भिन्न मिटने वालो
ये व्यापारी, ये जमींदार, जो हैं लक्ष्मी के परम
ये निपट निशाचर सूदखोर पीते मनुष्य का उष्ण
—भग

एक ओर धनिकों के महलों में कुत्तों को दूध पिलाया जाता
ओर चुप मुँह बच्चे एक चम्मच दूध के लिये तरसते हैं। एक
ललनाएँ फटे पुराने वस्त्रों में अपने शरीर की लाज रखती हैं।
सूदखोर महाजन उन गरीब निर्धनों के वस्त्र, बर्तन आदि बिकवा
की पिपासा शांत करता है। जीवन की इस विषमता को देख
कवि के हृदय में पूँजीपतियों के प्रति आक्रोश उमड़ प
कहता है :—

"श्वानों को मिलता दूध वस्त्र, भूखे बालक अकुला
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर, जाड़ों की रात बिता
युवती की लज्जा वसन बेच, जब ब्याज चुकाये ज
मालिक जब तेल फुलेलों पर, पानी-सा द्रव्य बहा
पापी महलों का अहंकार देता मुझको तब आग

दलित और पीड़ित वर्ग की दशा पर आँसू बहाते
लिये :—

'वह नस्ल जिसे कहते मानव कीड़ों से आज गई
बुझ जाती तो आश्चर्य न था, हैरत है पर कैसे
मजदूर के जीवन के प्रति कवि की सहानुभूति देखिये
ओ मजदूर ! ओ मजदूर ! !
तू सब चीजों का कर्त्ता, तू ही सब चीज

"ओ मजदूर ! ओ मजदूर !!
गर्मी तुझे तपाती आती, वर्षा देह धुलाती आती,
सर्दी खून सुखाती आती, तेरे उद्यम तेरे साधन,
तो भी तू इतना मजबूर, ओ मजदूर! ओ मजदूर !!
भूल जगत् का मालिक तू है, मालिक का भी मालिक तू है।
इस खिलकत का खालिक तू है, तू चाहे तो पल में कर दे,
इस दुनिया को चकनाचूर, ओ मजदूर! ओ मजदूर !!

२. रूस का यशोगान—प्रगतिवाद दर्शन और धार्मिक विश्वासों में मार्क्सवाद के भौतिकवाद का आधार लिये हुए है। उसने रूस के राजनीतिक आदर्शों को ही ग्रहण किया है और अपनी कविताओं में भी रूस का गुणगान बड़ी तल्लीनता से किया है—

"लाल रूस है ढाल साथियो, सब मजदूर किसानों का
लाल रूस का दुश्मन साथी, दुश्मन सब इन्सानों का
दुश्मन है सब मजदूरों का, दुश्मन सभी किसानों का,
× × × ×
वहाँ राज है पंचायत का, वहाँ नहीं है बेकारी॥"

—नरेन्द्र शर्मा

'युगवाणी' में 'पंत' मार्क्स का गुणगान करने लगते हैं :—

"धन्य मार्क्स चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर।
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान-चक्षु से प्रकट हुए प्रलयङ्कर॥"

इसी प्रकार कितने ही कवियों ने 'मार्क्स' तथा रूस के लाल निशान के सम्बन्ध में स्तुति-परक गीत गाये हैं।

३. क्रान्ति की भावना—प्रगतिवादी कवि क्रांति की आग लगाकर महानाश का वह ताण्डव नृत्य देखना चाहता है जिसमें समस्त बन्धन, पाखण्ड, ढोंग, अन्ध-विश्वास और रूढ़ियाँ भस्मीभूत हो जाँय। इनके ध्वंस पर वह नवीन समाज का निर्माण करना चाहता है किन्तु अपनी परवशता के कारण वह स्वयं ही बड़ा उद्विग्न रहा है—

"कैसे फूँकूँ कंठ कंठ में मैं विप्लव की भेरी,
मुझमें इतनी जलन मगर कितनी परवशता मेरी।
कैसे उद्वेलित कर दूँ मैं हृदय-हृदय की बाती,
मेरी शक्ति आग क्यों लौ को ही पकड़ न पाती।
कैसे जागे रक्त सिन्धु में ज्वार युगों का सोया,
कैसे मिले हड्डियों में जो वज्र युगों से खोया।
मैं जलता आया पर बोलो कैसे तुम्हें जलाऊँ,
वैसे मैं जन-जन के मन में वह ज्वाला धधकाऊँ॥

—अंचल

शोषितों के आँसू देखकर कवि 'बच्चन' क्रान्ति का संदेश देते हुये कहते हैं—

"उठ समय से मोर्चा ले,
धूल धूसर वस्त्र मानव,
देह पर फबते नहीं हैं,
देह के ही रक्त से तू देह के कपड़े रँगा ले॥"

४. रूढ़ियों का विरोध—प्रगतिवादी कवि परम-सत्ता में विश्वास नहीं करता। उसकी दृष्टि में मानव का ही विशेष महत्व है। वह मानव को शक्ति सम्पन्न और समस्त वस्तुओं का विधायक मानता है। प्रकृति के ऐसे सर्वश्रेष्ठ प्राणी को जब कवि जीवन की विषमताओं में पिसता हुआ देखता है तो धार्मिक परम्पराओं और रूढ़ियों के प्रति उसके हृदय में विद्रोह की भावना जाग्रत हो जाती है और वह कह उठता है—

'चला-चला मैं सत्य खोजने, जग की उठीं उँगलियाँ।
भ्रान्ति-अवलम्बित परम्परा की, नाचीं नयन पुतलियाँ।
मन्दिर भूला, मस्जिद भूली, भूली मदिर पिपासा।
किन्तु न भूली मुझे जगत् की, मरघट-सी अभिलाषा।
अरे बावले सत्य कहाँ है, कानों में टकराया।
नर के रक्त-मांस पर नर ने अपना महल बनाया।

—'दीन'

इस आणविक युग में जब सब ओर युद्ध की विभीषिका का हाहाकार गूंज

हो रहा है तब धर्म, मन्दिर, मस्जिद, गीता और कुरान की बातों को कौन सुने—

"हैं काँप रही मन्दिर, मस्जिद की मीनारें,
गीता-कुरान के शब्द बदलते जाते हैं।
ढहते जाते हैं दुर्ग द्वार मकबरे महल,
तख्तों पर इस्पाती बादल मँडराते हैं।
अँगड़ाई लेकर जाग रहा इन्सान नया,
जिन्दगी कब्र पर बैठी बीन बजाती है।
भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है।" —'नीरज'

प्रगतिवाद ईश्वर में आस्था नहीं रखता। कवि जब सच्चे, सीधे और निरपराध व्यक्तियों को दुष्टों द्वारा पीड़ित होते हुए देखता है तो उस समय ईश्वर के प्रति उसकी अविश्वास की भावना और भी दृढ़ हो जाती है। वह ब्रह्म की भावना को अस्वीकार करके उसके प्रति घृणाभाव प्रदर्शित करता है—

'आज भी जन-जन जिसे कर-बद्ध होकर याद करते,
नाम ले जिनका गुनाहों के लिये फरियाद करते,
किन्तु मैं उसका घृणा की धूलि से सत्कार करता।" —'अंचल'

५. देश के प्रति जागरूकता—तत्कालीन समस्याओं के प्रति प्रगतिवादी पूर्ण जागरूक दिखाई देते हैं। गत महायुद्ध के कारण हुई मँहगाई, बंगाल का अकाल, हिन्दू मुस्लिम समस्या आदि सभी विषयों पर प्रगतिवादी कवियों ने रचनाएँ की हैं। हिन्दू-मुस्लिम समस्या के प्रति 'नरेन्द्र' जी की निम्नांकित पंक्तियाँ देखिए—

"मैं हिन्दू हूँ तुम मुसलमान,
पर क्या दोनों इन्सान नहीं।
मैं तुम्हें समझता रहा म्लेच्छ,
तुम मुझे वधिक और दक़ियानी।
सदियों तक हम दोनों साथ रहे,
यह बात न अब तक पहिचानी।
दोनों ही धरती के जाये,
हम अनचाहे मेहमान नहीं।

मैं हिन्दू हूँ तुम मुसलमान
पर क्या दोनों इन्सान नहीं !

इसी प्रकार बङ्गाल के अकाल पर लिखी हुई निम्नांकित कविता में कितना हृदय-द्रावक वर्णन किया गया है—

"बाप बेटा बेचता है, माँ अचेतन हो रही है।
भूख से बेहाल होकर, धैर्य धीरज प्राय खोकर।
हो रही अनरीति बर्बर, राष्ट्र सारा देखता है।
बाप बेटा बेचता है।

देश में बेकारी और मँहगाई के कारण सहस्रों प्राणी भिक्षावृत्ति करके अपने दयनीय जीवन का निर्वाह करते हैं। 'निराला' के भिक्षुक का यह हृदय-द्रावक एवं करुण चित्र देखिए—

"वह आता
दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को भूख मिटाने को,
मुँह फटी-पुरानी झोली को फैलाता।"

६. नारी शोषण का विरोध—युग-युग से नारी रूढ़ियों की शृङ्खलाओं में जकड़ी हुई है। मानव-समाज उसे अपनी वासना-पूर्ति का साधन मात्र मानता है। त्याग और तपस्या की मूर्ति नारी की इस अधोगति को देखकर प्रगतिवादी कवि का हृदय करुणा से भर जाता है और वह उसे मुक्त करना चाहता है—

"मुक्त करो नारी को मानव,
चिर वन्दिनी नारी को।
युग-युग की बर्बर कारा से,
जननी सखि प्यारी को।"

× × × ×

मुक्त करो जीवन संगिनी को,
जननी देवी को, आहत।

जग जीवन में मानव के संग,
हो मानवी प्रतिष्ठित ।"

इस विवेचन से स्पष्ट है कि प्रगतिवादी काव्य-धारा सामाजिकता की ही ओर बढ़ती चली गई है। जीवन-दशा का यथार्थ चित्रण करना इस काव्य-धारा का प्रमुख उद्देश्य है। इस साहित्य में वह रस नहीं है जो उत्तप्त प्राणों को शीतलता प्रदान करता है। इतना अवश्य है कि शोषित और पीड़ित जनता में आशा का संचार करके समाज के शोषण-कर्ताओं के प्रति विरोधी भावनाओं को उभाड़ता है।

प्रगतिवादी काव्य की प्रमुख विशेषताएं—

१. प्रगतिवाद धर्म, ईश्वर और आस्तिकता में मोह नहीं रखता।

२. साहित्य की चिरन्तनता पर इसका विश्वास नहीं है। यह प्राचीन साहित्य को सामन्तशाही का पोषक मानता है।

३. प्रगतिवाद समाज के यथार्थ चित्रण पर बल देता है।

४. प्रगतिवाद शान्ति की अपेक्षा संघर्ष में विश्वास अधिक रखता है।

५. प्रगतिवाद शोषकों के प्रति आक्रोश तथा शोषितों के प्रति सहानुभूति रखता है।

६. प्रगतिवाद रूढ़ियों के विरुद्ध आन्दोलन करता है और क्रान्ति की भावना का स्वर तीव्र करता है।

७. प्रगतिवादी कवि अपनी कविता में नवीन प्राण प्रतिष्ठा, नये टेकनीक, नूतन छन्द, नवीन भाषा और नई भावाभिव्यक्ति का समावेश करता है।

८. प्रगतिवाद प्राचीनता का मोह छुड़ाकर नवीन समस्याओं का प्रगतिशील हल प्रस्तुत करता है।

९. प्रगतिवाद नारी-शोषण का विरोध और उन्मुक्त प्रेम का पोषण करता है।

१०. देश की समस्याओं के प्रति प्रगतिवादी कवि सदा जागरूक रहता है।

११. पूँजीवादी प्रथा के पोषकों को समाज का शोषक समझ कर वह उनके विनाश की कामना करता है।

१३. दलित और शोषित समाज का तथ्यपरक अंकन करके उसे प्रगतिशील बनाना है।

११. प्रगतिवाद मार्क्सवाद का पोषक है। वह जन का यथार्थ वर्णन करना अपना परम कर्तव्य समझता है।

१४. प्रगतिवाद कल्पना प्रधान काव्य नहीं अपितु जन-जीवन का काव्य है।

प्रयोगवादी काव्य-धारा

हिन्दी साहित्य में प्रयोगवादी कविता का आविर्भाव सन् १९४३ में 'तार सप्तक' के प्रकाशन के साथ हुआ। श्री अज्ञेय इस काव्य-धारा के कर्णधार कहे जाते हैं। 'तार सप्तक' का सम्पादन अज्ञेय जी ने ही किया। इस सप्तक में सात कवियों की रचनायें संग्रहीत हैं उनके नाम हैं—सर्वश्री अज्ञेय, गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर और रामविलास शर्मा। सन् १९५१ में 'दूसरा सप्तक' प्रकाशित हुआ जिसमें भवानीप्रसाद मिश्र, हरिनारायण व्यास, शकुन्तला माथुर, शमशेरबहादुरसिंह, नरेशकुमार मेहता, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती की कवितायें संग्रहीत हैं। इनके अतिरिक्त 'प्रतीक', 'पाटल', 'दृष्टिकोण' आदि पत्रिकाओं में भी ये प्रयोगवादी कवितायें प्रकाशित होती रहीं। अभी सन् १९५ से प्रयोगवादी कवियों के संगठित प्रयास के फलस्वरूप 'नई कविता' के नाम प्रयोगवादी कविताओं का एक संग्रह निकलने लगा है। इस 'नवीन कविता' नवीनतम कलाकारों में सर्वश्री लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, बालकृ राव, विजयदेवनारायण साही, जगदीश गुप्त, कुँवर नारायण, दुष्यन्त कु आदि के नाम प्रमुख हैं।

प्रयोगवाद की इस 'नई कविता' का आलोचकों ने समुचित स्वागत किया। भाव, भाषा, शैली, संवेदना आदि की दृष्टि से प्रयोगवादी कविताओं निरर्थक, ऊटपटांग और रद्दी बताया है। पं० नन्ददुलारे बाजपेयी के में—"प्रयोगवादी साहित्यिक से साधारणतः उस व्यक्ति का बोध हो जिसकी रचना में कोई तात्विक अनुभूति, कोई स्वाभाविक क्रम-विकास या सुनिश्चित व्यक्तित्व न हो।" डा० प्रेमनारायण शुक्ल काव्य-क्षेत्र में हु

नवीन प्रयोगों को थोथा और निस्सार समझते हैं। उनका कथन है कि—"वैचित्र्य विधान के मोह में पड़कर प्रयोगवादी कला की आत्मा की बड़ी ही निर्मम हत्या करके भी यह समझता है कि उसने आगे आने वाली पीढ़ियों के लिये पुण्य-पथ का प्रदर्शन किया है। यहाँ वह भूल जाता है कि वैचित्र्य-विधान ही काव्य नहीं। ... "ऐसे स्वयम्भू कवियों की अहमन्यता के परिणाम स्वरूप ही साहित्यिक क्षेत्र में विकृति उत्पन्न हो रही है।" डा० रामविलास शर्मा ने प्रयोगवादियों की आलोचना करते हुए लिखा है कि—"प्रयोगवाद अज्ञेय जैसे कलाकारों की सामाजिक उत्तरदायित्व से बरी होने की माँग है। प्रयोगवाद का कला-सिद्धान्त है, कला कला के लिये। × × × × विषय वस्तु में निकम्मापन, निरर्थकता, निरुद्देश्यता, कभी सुराही पर, कभी अपने अतुकान्त आहें भरना यह है प्रयोगवाद। इन कवियों के लिये जन-जीवन या तो है नहीं या है तो उन्हीं जैसा-विकृत और निरुद्देश्य।"

डा० राजनाथ शर्मा के शब्दों को भी इस सम्बन्ध में यहा उद्धृत करना मैं समीचीन समझता हूँ—

"इन कवियों की अनुभूति ऐसी नहीं होती जिसे साधारण जन समझ सकें। भाषा भी इनकी ऐसी ऊट पटांग और कभी-कभी इतनी दुरूह होती है कि उसे कोई भी नहीं समझ पाता। उनके प्रतीक एवं उपमाएँ सहज-बोधगम्य नहीं होतीं। कुछ थोड़ी सी कविताओं को छोड़कर शेष सम्पूर्ण प्रयोगवादी काव्य एक लक्ष्यहीन भ्रान्त व्यक्ति के समान मुँह ऊपर उठाये चला जारहा है।"

आलोचकों के उपर्युक्त मूल्याङ्कन से प्रयोगवाद का वास्तविक रूप हमारे सामने उपस्थित हो जाता है अतः इस सम्बन्ध में अधिक न लिखते हुए मैं यहाँ नई कविता की मुख्य प्रवृत्तियों पर संक्षेप में विचार करूँगा।

प्रयोगवाद की नयी कविता में घोर वैयक्तिकता है। कवि अपनी अनुभूतियों एवं विचारधाराओं का ही प्रकाशन करते हैं जिसमें उनकी रचनाएँ पाठक के हृदय को आन्दोलित नहीं करतीं। यथा—

साधारण नगर के
एक साधारण घर में
मेरा जन्म हुआ,

बचपन बीता अति साधारण
साधारण खान-पान
साधारण वस्त्र-धारा

× × ×

तब मैं एकाग्रमन
जुट गया ग्रन्थों में
मुझे परीक्षाओं में विलक्षण श्रेय मिला !

इस कविता में कवि ने केवल अपनी महानता का ही प्रदर्शन किया अतः पाठक के हृदय पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

कुछ प्रयोगवादी कवियों में दूषित वृत्तियों को नग्न रूप में चित्रण करने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। यथा—

"मेरे मन की अँधियारी कोठरी में
अतृप्त आकांक्षा की वेश्या बुरी तरह खांस रही है।

× × +

पास घर आये तो
दिनभर का थका जिया मचल-मचल जाये।

यही नहीं एक कवियित्री ने तो सुहाग-बेला की 'लपक झपक' का निस्संकोच वर्णन किया है—

"चली आई बेला सुहागन पायल पहने.......
प्राण विद्ध हरिणीसी
बाँहों में सिमट जाने की
उलझने की, लिपट जाने की,
मोती की लड़ी समान.......।"

अस्वास्थ्यकर साहित्य का सृजन कर प्रयोगवादी कवि अपना बड़ा गौरव समझते हैं। समाज पर ऐसी दूषित वृत्तियों का क्या प्रभाव पड़ेगा इसकी ओर उनका किंचितमात्र भी ध्यान नहीं है। जब आदर्श की प्रतीक भारतीय ललनायें निर्लज्ज होकर अपनी वासनाओं का प्रकाशन इस प्रकार कर सकती हैं फिर पुरुष वर्ग की अभिव्यक्ति के लिये तो कहा ही क्या जा सकता है।

प्रयोगवादी कवि प्रायः निराशावादी होता है। वह न अतीत से प्रेरणा ग्रहण करता है और न भविष्य से उल्लसित होता है। वह तो केवल वर्तमान तक ही अपनी दृष्टि सीमित रखता है और इसी क्षण सब कुछ प्राप्त करने की इच्छा करता है—

> आओ हम उस अतीत को भूलें
> और आज की अपनी रग-रग के अन्तर को छूलें
> छूलें इसी क्षण
> क्योंकि कल के वे नहीं रहे,
> क्योंकि कल हम नहीं रहेंगे।

इसके अतिरिक्त इस काव्य-धारा के कवियों में बौद्धिकता और नीरसता की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। इनकी रचनाएँ बुद्धि प्रधान होने से शुष्क और नीरस होती हैं अतः वे पाठक की रागात्मक वृत्ति को स्पर्श करने की अपेक्षा उसके मस्तिष्क को उलझन में डाल देती हैं। कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

> अन्तरंग की इन घड़ियों पर छाया डालदूँ।
> अपने व्यक्तित्व को एक निश्चित साँचे में ढाल दूँ।
> निजी जो कुछ है अस्वीकृत कर दूँ।
> संबोधन के सर्ग को उत्सर्हृत कर दूँ। आदि।

उपर्युक्त कविता का क्या प्रभाव पड़ सकता है यह तो विज्ञ पाठक गण स्वयं ही विचार सकते हैं।

अन्त में प्रयोगवादी काव्यधारा के सम्बन्ध में पं० नन्ददुलारे बाजपेयी के शब्दों को उद्धृत कर इस विषय को यहाँ समाप्त करता हूँ—"किसी भी अवस्था में यह प्रयोगों का बाहुल्य वास्तविक साहित्य-सृजन का स्थान नहीं ले सकता। प्रयोग में और काव्यात्मक निर्माण या सृजन में जो मौलिक अन्तर है उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। विशेषकर काव्य का क्षेत्र प्रयोगों की दुनियाँ से बहुत दूर है। कवि सबसे पहले अपनी अनुभूतियों के प्रति उत्तरदायी है। वह इनके साथ खिलवाड़ नहीं कर सकता। उसका उत्तरदायित्व काव्य-परम्परा और काव्यात्मक अभिव्यक्ति के प्रति है। वह किसी भी अवस्था में ऐसे

प्रबंधों का वर्णन नहीं कर सकता जिनका उस काल के मानस और मान
रचनाओं से तथा उन दोनों के स्वाभाविक विकास-क्रम से सहज सम्बन्ध नहीं है
श्री वाजपेयीजी के अनुसार प्रबंधवादी काव्यधारा में निम्नांकित दोष हैं-

१. अनेक रचनाएँ क्षणिक विनोद अथवा मौखिक व्यंग्य की सृष्टि के रूप
नहीं जातीं।

२. आगे बढ़ने पर ऐसी रचनाओं से मालूम पड़ता है जिनमें सर्व
धारणा टूट जाती है और पूरी रचना पढ़ लेने पर भी किसी मानसिक क
योग नहीं होता।

३. भाव-धारा की शिथिलता है।

४. इन रचनाओं में सामाजिक और व्यवहारिक तथ्यों का नितां
अभाव है।

५. इनमें सामाजिक और राजनैतिक उत्तरदायित्व के प्रति विद्रोह त
नैतिक, सैद्धान्तिक एवं चारित्रिक उच्छृङ्खलता की छूट माँगी जाती है।

६. इनमें जीवन के प्रति किसी रचनात्मक दृष्टि, कर्मण्यता और नि
शीलता का अभाव है।

अस्तु आधुनिक काव्य-धारा के इतिहास के इस विवेचन से हम
निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हिन्दी-कविता का भविष्य उज्ज्वल
हिन्दी के प्राचीन और आधुनिक महाकाव्यों की परम्परा का इस क
विकास हुआ है। खण्डकाव्य और प्रबन्ध-काव्य भी इस काल में रचे ग
प्रसाद की 'कामायनी' के उपरान्त डा० रामानन्द तिवारी का 'पार्वती' म
प्रकाशित हुआ है। दिनकरजी के 'कुरुक्षेत्र' ने महाकाव्यों की परम्परा
पग और आगे बढ़ाया है। इनके अतिरिक्त रश्मि-रथी, देवार्चन, जयभार
क्रन्दन, पथ पर तथा मानस मूर्च्छना आदि अन्य काव्य भी उल्लेख
इस प्रकार सर्वश्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर', अयोध्यासिंह उपाध्याय, '
जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' तथा
सिंह 'दिनकर' आदि कवियों ने अपनी रचनाओं द्वारा हिन्दी साहित्य
अङ्ग की श्रीवृद्धि करके उसे सम्पन्न बनाने में अपना पूर्ण सहयोग प्रदा

प्रश्न

१. आधुनिक हिन्दी काव्य-धारा के विकास क्रम पर संक्षेप में एक लेख प्रस्तुत कीजिये।

२. "भारतेन्दु युग हिन्दी काव्य-धारा के नये मोड़ का युग है" इस कथन का विवेचन करते हुये भारतेन्दु युग के काव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।

३. "भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र नवीन ब्रजभाषा काव्य के जनक थे" इस कथन की मीमांसा करते हुये, आधुनिक ब्रज-भाषा-काव्य के विकास पर एक सारगर्भित लेख लिखिये।

४. "यद्यपि 'खड़ी बोली' की कविता प्रचार की दृष्टि से नवीन है फिर भी प्रयोग की दृष्टि से यह प्राचीन रही है" इस कथन की सार्थकता प्रमाणित कीजिये तथा खड़ी बोली काव्य के विकास में भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने जो योग दिया है उसका उल्लेख कीजिये।

५. "भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने प्राचीन भाषा में भाव-कल्प के द्वारा कविता में एक परिवर्तन उपस्थित किया किन्तु द्विवेदी काल तो यथार्थतः खड़ी बोली की कविता के 'जन्म और विकास' का काल ही है" इस कथन की विवेचना कीजिये और द्विवेदी युग में हुई खड़ी बोली काव्य की प्रगति पर प्रकाश डालते हुये उसकी प्रमुख विशेषताएँ बताइये।

६. डा० नगेन्द्र के अनुसार *'छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है।'* इस कथन का युक्ति-युक्त विवेचन कीजिये।

७. छायावाद की मूल प्रवृत्तियों का सोदाहरण उल्लेख करते हुये उसकी प्रमुख विशेषतायें बताइये।

८. रहस्यवाद का स्वरूप स्पष्ट करते हुये उसकी सामान्य प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिये।

९. "हिन्दी साहित्य में हालावादी काव्य तूफान की भाँति जिस वेग से फैला उसी वेग से वह विलीन भी हो गया" इस कथन की समीक्षा कीजिये और.

उसके इतिहास पर प्रकाश डालते हुये उसकी प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिये ।

१०. प्रगतिवादी काव्य के उद्भव और विकास पर एक सारगर्भित लेख लिखिये और उसकी प्रमुख विशेषतायें बताइये ।

११. प्रयोगवादी काव्यधारा की उत्पत्ति और विकास का विवेचन करते हुये उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिये ।

टिप्पणी:—पुस्तक के आदि में "आधुनिक कविता का उद्भव औ विकास" शीर्षक के अन्तर्गत दी हुई सामग्री में उपर्युक्त सभी प्रश्नों के उ सन्निहित है ।

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

जीवन परिचय—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय का जन्म वैशाख कृष्ण ३, सं० १९२२ वि० तदनुसार १५ अप्रैल सन् १८६५ ई० में निजामाबाद, जिला आजमगढ़ में हुआ। इनके पिता का नाम पं० भोलासिंह तथा माता का नाम रुक्मिणी देवी था। इनके पिता बहुत पढ़े लिखे नहीं थे पर इनके ताऊ पं० ब्रह्मासिंह संस्कृत के उच्चकोटि के विद्वान् एवं ज्योतिषी थे। उनकी देख-रेख में ही अयोध्यासिंह जी की शिक्षा-दीक्षा हुई।

सात वर्ष की अवस्था में 'हरिऔध' जी को निजामाबाद तहसीली स्कूल में प्रवेश कराया गया। घर पर इनके ताऊ इन्हें संस्कृत पढ़ाया करते थे। फारसी की शिक्षा इन्होंने स्कूल में ग्रहण की। फिर अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त करने इन्हें बनारस के क्वीन्स कालेज में भेजा गया किन्तु वहाँ अस्वस्थ रहने के कारण आप अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त न कर सके। फिर भी घर पर इन्होंने फारसी, उर्दू, संस्कृत, बँगला आदि का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

सन् १८८२ में इनका विवाह बलिया जिला में सिकन्दरपुर ग्राम के निवासी पं० विष्णुदत्त मिश्र की कन्या अनन्तकुमारी के साथ सम्पन्न हुआ। हरिऔधजी का प्रारंभिक जीवन आर्थिक संकटों का जीवन था। अतः उन्होंने सन् १८८४ में हिन्दी मिडिल स्कूल में अध्यापक का कार्य आरम्भ कर दिया। इसके तीन वर्ष बाद सन् १८८७ में अपने नार्मल परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् आपने कानूनगो की परीक्षा पास करली और सन् १८९० ई० में आप कानूनगो हो गये। लगन, परिश्रम और ईमानदारी के साथ काम करने के कारण आप सदर कनूनगो हो गये। सन् १९०५ ई० में आपकी पत्नी का देहावसान हो गया, फिर हरिऔधजी ने दूसरा विवाह नहीं किया और आगामी ४२ वर्ष तक विधुर जीवन व्यतीत किया। चौंतीस वर्ष कार्य करने के पश्चात १ नवम्बर सन् १९२३ ई० में आपने सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण कर लिया और अपना शेष जीवन साहित्य सेवा में अर्पित

कर दिया। पं० मदनमोहन मालवीय के अनुरोध से हरिऔधजी ने काशी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में अवैतनिक अध्यापक के रूप में अध्यापन कार्य करना स्वीकार कर लिया। लगभग २० वर्ष तक बड़ी सफलता पूर्वक कार्य करने के पश्चात् सन् १९४१ में वे आजमगढ़ आ गये और यहीं ६ मार्च सन् १९४७ ई० को उनका स्वर्गवास हुआ।

हरिऔधजी हिन्दी जगत् में गणमान्य व्यक्तियों में से थे। वे हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के सभापति रह चुके थे। सम्मेलन द्वारा उन्हें 'विद्यावाचस्पति' की उपाधि से विभूषित किया गया था। सन् १९२५ ई० में 'प्रियप्रवास' महाकाव्य पर उन्हें मंगलाप्रसाद पारितोषिक भी मिला था।

व्यक्तित्व—'हरिऔधजी' अत्यन्त सरल हृदय तथा शान्ति प्रकृति के व्यक्ति थे। उनका जीवन भारतीय जीवन का आदर्श था। शरीर से वे दुबले पतले थे और उनका रंग गेहुँआ था। आप लम्बे केश और दाढ़ी रखते थे। मुख पर उनके तेज झलकता रहता था। घर पर वे प्रायः कमीज, वास्कट तथा पाजामा पहनते थे, अन्य सार्वजनिक स्थानों पर जाते समय श्वेत-साफा, शेरवानी, पाजामा, अंग्रेजी जूते और मौजे पहना करते थे। गले में दुपट्टा भी डाल लेते थे।

हरिऔधजी का स्वभाव अत्यन्त कोमल और हृदय अत्यन्त उदार था। वे छोटे-बड़े सभी व्यक्तियों से समानरूप से मिलते थे। गर्व तो उन्हें छूने मात्र को न था। उनके स्वभाव में कृत्रिमता नहीं थी। बाल्यावस्था से ही वे गंभीर और सौम्य थे। पत्नी के निधन के पश्चात् तो वे और भी गंभीर हो गये थे। हास-परिहास उन्हें बहुत कम पसन्द था। एकान्त जीवन उन्हें अधिक प्रिय था। काव्य और संगीत के प्रति बचपन से ही आप रुचि रखते थे। मानव-समाज को ऊँचा उठाने की भावना उनके हृदय में सदैव विद्यमान रहती थी इसीलिए उन्होंने अपने काव्यों में समाज सेवा, विश्व-बंधुत्व, परोपकार आदि उदात्त भावनाओं के मनोरम चित्र उपस्थित किये हैं। प्राकृतिक शोभा के प्रति भी उनके हृदय में एक विशेष आकर्षण था।

अपने देश की सभ्यता और संस्कृति के प्रति हरिऔधजी अविचल अनुराग रखते थे। प्राचीन आदर्शों के प्रति वे श्रद्धा रखते थे किन्तु वे

अन्धविश्वासी नहीं थे। आप सिक्ख धर्म के कट्टर अनुयायी होने पर भी सभी धर्मों का समान रूप से आदर करते थे। वे पूर्ण आस्तिक थे और ईश्वर की सत्ता को सर्वत्र व्यापक मानते थे।

प्रभाव—बाल्यावस्था से ही वे निजामाबाद के प्रसिद्ध नानक पंथी बाबा सुमेरसिंह से प्रभावित थे। सुमेरसिंहजी स्वयं कवि थे। उनका उपनाम 'हरि सुमेर' था। उन्हीं के अनुकरण पर अयोध्यासिंहजी ने अपना उपनाम भी 'हरिऔध' रख लिया। हरिऔधजी बचपन से ही बाबाजी के यहाँ जाकर सत्संग में भाग लिया करते थे। वहाँ सूर, कबीर, दादू, नानक आदि संतों की पवित्र वाणियों का कीर्तन होता था और समस्या-पूर्ति भी हुआ करती थीं। ऐसे सत्संगों में हरिऔधजी को विशेष आनन्द आता था। वह घंटों बैठकर गायकों की पवित्र वाणी और कवियों की समस्यापूर्ति का रसास्वादन किया करते थे। ऐसे वातावरण में हरिऔधजी की धार्मिक चेतना को तो बल मिला साथ ही उनकी साहित्यिक प्रतिभा को भी विकास के लिये पर्याप्त अवसर प्राप्त हुआ।

हरिऔधजी का काव्य-जीवन समस्या पूर्तियों से ही प्रारंभ हुआ। वह रीतिकालीन परम्पराओं को लेकर काव्य क्षेत्र में अवतीर्ण हुये और कुछ समय तक उसी भाव धारा में निमग्न रहे, पर द्विवेदी युग के प्रभाव में आकर उन्होंने ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली में कविता करना प्रारम्भ कर दिया। खड़ी बोली में उनकी काव्य-प्रतिभा का अच्छा विकास हुआ।

प्रतिभा—हरिऔध जी की प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने मुक्तक कविताएँ और प्रबन्ध-काव्य, उपन्यास, आलोचना, इतिहास, अनुवाद आदि सभी पर अपनी रचनाएँ प्रस्तुत करके हिन्दी-साहित्य के भण्डार को भरने का स्तुत्य प्रयत्न किया। गद्य और पद्य दोनों पर ही आपका समान अधिकार था। आपने जितनी मार्मिकता और सजीवता के साथ ब्रजभाषा में कविताएँ लिखीं उतनी सजीवता और मार्मिकता आपकी खड़ी बोली की कविताओं में भी प्राप्त है। आपकी भाषा अत्यन्त परिष्कृत, विशुद्ध एवं प्राञ्जल है।

हरिऔध जी की रचनायें—

महाकाव्य—(१) प्रियप्रवास, (२) वैदेही बनवास और (३) पारिजात—

मुक्तक काव्य-संग्रह—(१) कबीर कुण्डल, (२) श्रीकृष्ण-शतक (३) प्रेमाम्बु वारिधि, (४) प्रेमाम्बु प्रवाह, (५) प्रेमाम्बु-प्रस्रवण, (६) प्रेम-प्रपंच, (७) उपदेश-कुसुम, (८) प्रेम-पुष्पोपहार, (९) उद्बोधन, (१०) ऋतुमुकुर, (११) पुष्प विनोद; (१२) विनोद वाटिका, (१३) चोखे चौपदे, (१४) चुभते चौपदे, (१५) पद्य प्रसून, (१६) बोलचाल, (१७) रस कलस, (१८) फूल पत्ते, (१९) ग्राम गीत, (२०) काव्योपवन, (२१) बाल कवितावली, (२२) हरिऔध सतसई, और (२३) मर्म स्पर्श।

उपन्यास—(१) ठेठ हिन्दी का ठाट, (२) अधखिला फूल।

रूपक—(१) रुक्मिणी परिणय, (२) प्रद्युम्न विजय व्यायोग।

आलोचनात्मक—(१) हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, (२) रस-कलस की भूमिका, (३) कबीर वचनावली की भूमिका।

अनूदित ग्रन्थ—(१) वेनिस का बाँका, (२) रिपवान विंकिल, (३) नीति निबन्ध।

हरिऔध जी की काव्य-साधना—आधुनिक युग के कवियों में हरिऔध जी अपना सर्वप्रथम स्थान रखते हैं। उनकी रचनाओं में तीनों युगों (भारतेन्दु, द्विवेदी और छायावाद) की काव्य-प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं। इनका रचनाकाल सन् १८७६ ई० से प्रारम्भ हुआ है और तब से सन् १९४७ तक अर्थात् अपनी मृत्यु पर्यन्त ये कुछ न कुछ बराबर लिखते ही रहे। अपने इस रचना काल में हरिऔध जी दो रूपों में दिखाई देते हैं:—(१) ब्रजभाषा के हरिऔध और (२) खड़ी बोली के हरिऔध।

(१) ब्रजभाषा के हरिऔध—हरिऔध जी ने ब्रजभाषा में जिन मुक्तक की रचना की है उनमें से अधिकांश 'रस-कलस' में संग्रहीत हैं। 'रस-कलस' में काव्य के सभी रसों को शास्त्रीय विधि से प्रस्तुत किया गया है। साथ ही कुछ नवीन उद्भावनायें भी की हैं। उदाहरण के लिये निम्न छन्द में वीर रस के अन्तर्गत कवि की राष्ट्रीय भावना देखिये—

"कैसे सुरसरि सुर काज अमर है को,
...कामी क्यों बनति मुक्ति-मंदनी मनोहर।

अरु चिर दारु चारु चंदन बनत कैसे,
कौंच-माहि कैसे होति कंचन कलेवरा ॥
'हरिऔध' कैसे सैल लहत सतो-सी सुता,
सिता क्यों सुहाति है सुधा-रस-सहोदरा ।
कैसे वसुधा को वसुधापन विदित होति,
जो न होति सिद्ध भूमि भारत वसुन्धरा ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि व्रजभाषा में राष्ट्र-भावनाओं से ओत-प्रोत कविता करने वालों में हरिऔध जी सर्वप्रथम हैं। 'रस-कलस' में नायिका भेद वर्णन करके हरिऔध जी ने अपनी जागरुकता का जो परिचय दिया है वह भी युगानुरूप ही है। अतः हम कह सकते हैं कि उनका व्रजभाषा काव्य हर पहलू से समुन्नत, स्वस्थ और प्रभावशाली है।

(२) **खड़ी बोली के हरिऔध**—द्विवेदी युग से प्रभावित होकर हरिऔध जी ने खड़ी बोली में कविता करना प्रारम्भ किया। खड़ी बोली में भी वे दो रूपों में दिखाई देते हैं :—(१) चौपदों के हरिऔध और (२) प्रियप्रवास के हरिऔध।

चौपदों की भाषा बोलचाल की मुहावरेदार भाषा है। इसमें हरिऔध जी ने 'चोखे चौपदे', और 'चुभते चौपदे' लिखे। इनमें मानव-हित और समाज-कल्याण की विशुद्ध भावनाओं का ही चित्रण हुआ है। उदाहरण के लिये निम्न चौपदा देखिये :—

'मन्दिरों मसजिदों या कि गिरजों में,
खोजने हम कहाँ-कहाँ जायें।
वह तो फैले हुये जहाँ में हैं,
हम कहाँ तक निगाह फैलायें ॥'

ईश्वर की सर्वव्यापकता पर उपर्युक्त चौपदे में अच्छा प्रकाश डाला गया है। हरिऔध जी के इन चौपदों में कवित्व तो नहीं किन्तु मुहावरों की भरमार से भाषा अवश्य रंगीन हो गई है। काव्य में मुहावरों का प्रयोग करने में हरिऔध जी सिद्धहस्त हैं। इस क्षेत्र में वे हिन्दी कवियों में सुमेर हैं।

'प्रियप्रवास'—संस्कृत के वर्ण-वृत्तों में खड़ी बोली का प्रथम और सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। यह १७ सर्गों में पूर्ण हुआ है। अभी तक संस्कृत वर्ण-वृत्तों में ही नहीं किसी भी छन्द में आधुनिक खड़ी बोली के अन्तर्गत कोई महाकाव्य नहीं लिखा गया था। हरिऔध जी ने 'प्रियप्रवास' की रचना कर इस अभाव की पूर्ति की। इस ग्रन्थ में कृष्ण के ब्रज से मथुरा प्रवास की कथा चित्रित की गई है। इस छोटी-सी कथा के भीतर कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन की घटनाओं को कवि ने बड़े ही कौशल से गुम्फित कर दिया है। साथ ही अनेक आधुनिक, सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं को भी झलका दिया है। कवि के कथा कहने का ढंग अभिनव तथा मनोवैज्ञानिक है। आद्योपान्त कथा कहने के स्थान पर केन्द्रीय प्रसंग के आगे-पीछे होकर कवि ने कलात्मक शैली में कथा प्रस्तुत कर हिन्दी-महाकाव्य को एक नवीन दिशा की ओर मोड़ दिया है। 'प्रियप्रवास' में 'कृष्ण' ईश्वर नहीं युगानुरूप जन-नेता हैं। उनमें कवि ने समाज-सेवा, विश्व-बन्धुत्व, स्वार्थ-त्याग, देश-प्रेम, परोपकार आदि उदात्त वृत्तियों का समावेश कर उन्हें महामानव के रूप में प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार 'राधा' भी आधुनिक युग की लोक-सेविका के रूप में चित्रित की गई है :—

> 'संलग्ना हो विविध कितने सान्त्वना कार्य में भी,
> वे सेवा थीं सतत करतीं वृद्ध रोगी जनों की।
> दीनों-हीनों अबल विधवा आदि को मानतीं थीं,
> पूजी जाती ब्रज-अवनि में देवियों-सी अतः थीं॥'

प्रियप्रवास में कवि ने प्रकृति के भी मनोरम चित्र उपस्थित किये हैं। इस काव्य का आरम्भ ही प्रकृति-चित्रण से हुआ है :—

> "दिवस का अवसान समीप था,
> गगन था कुछ लोहित हो चला।
> तरु-शिखा पर थी अब राजती,
> कमलिनी कुल वल्लभ की प्रभा॥

प्रियप्रवास का नवम सर्ग तो पूर्णतः प्रकृति-चित्रण से पूर्ण है। किन्तु वहाँ कवि ने प्रकृति का सांगोपांग रूप (बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव) चित्रित न करते हुये प्रायः नाम गिनाने की प्राचीन शैली का ही अनुसरण किया है :—

"जम्बू आम्र कदम्ब निम्ब फालसा जम्बीर औ आँवला।
लीची दाड़िम नारिकेल इमिली औ शिंशपा इंगुदी॥"

इस प्रकार कथावस्तु, भाव निरूपण, रचना शैली, भाषा, वृत्त आदि सभी दृष्टियों से यह काव्य-ग्रन्थ अनुपम एवं अद्वितीय है।

वैदेही वनवास—हरिऔधजी का दूसरा महाकाव्य ग्रन्थ 'वैदेही वनवास' है। यह १८ सर्गों में पूर्ण हुआ है। इसमें मर्यादा पुरुषोत्तम राम तथा सीता के लोकहितैषी जीवन की झाँकी प्रस्तुत की गई है। इस ग्रन्थ में राम के लोकानुरंजनकारी रूप के अतिरिक्त कवि ने आध्यात्मिक विचारों का भी बड़ा ही सुन्दर निरूपण किया है। श्रीराम को अवतारी न मान कर एक साधारण रूप में चित्रित किया है। राम और सीता का जीवन साधारण मानव की भाँति नियति के हाथों ही से संचालित होता हुआ दिखाया गया है। भाषा सरल तद्भव शब्द प्रधान खड़ी बोली है जो कवि के भावों के सर्वथा अनुकूल है। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कारों का प्रयोग स्वाभाविक तथा रसोत्कर्ष में सहायता प्रदान करने वाला है। आधुनिक अलंकारों जैसे मानवीकरण, ध्वन्यर्थ व्यंजना, विशेषण विपर्यय आदि के प्रयोग भी यत्र-तत्र हुए हैं। छन्दों में रोला, दोहा, चतुष्पद, त्रिलोकी, तारंक, पदाकुलक, सखी आदि मात्रिक छन्दों को अपनाया गया है। काव्य के तीनों गुणों (प्रसाद, माधुर्य और ओज) का समावेश इस ग्रंथ में प्राप्त है। प्रकृति के प्रति कवि का अगाध प्रेम है। अतः 'वैदेही वनवास' में कवि ने प्रकृति का अत्यंत भव्य तथा संश्लिष्ट चित्र उपस्थित किया है। यथा :—

> प्रकृति सुन्दरी विहँस रही थी, चन्द्रानन था दमक रहा।
> परम दिव्य बन कान्त-अङ्क में, तारक-चय था चमक रहा।
> पहन श्वेत-साटिका सिता की वह ललिता दिखलाती थी।
> ले ले सुधा सुधाकर-कर से, वसुधा पर बरसाती थी॥

इस प्रकार प्रिय प्रवास की भाँति "वैदेही वनवास" भी काव्य-सौष्ठव युक्त तथा आधुनिक युग की बौद्धिक चेतना से सम्पन्न महाकाव्य है।

पारिजात—यह ग्रंथ १५ सर्गों में लिखा गया है। कवि ने इसे महाकाव्य बताया है। कलेवर की दृष्टि से भले ही इसे महाकाव्य मान लिया जाय किन्तु

शास्त्रीय दृष्टि से यह महाकाव्य की कोटि में नहीं आता। इसमें न प्रबन्ध निर्वाह है और न चरित्र है। संधि विधान भी इसका शिथिल है। इसके कुछ सर्गों के शीर्षकों के रूप में दृश्यजगत्, अन्तर्जगत्, स्वर्ग, कर्म विपाक, प्रलय प्रपंच, सत्य का स्वरूप, परमानन्द आदि का विवेचन किया गया है अतः यह ग्रंथ मुक्तक काव्य की कोटि में आता है। इसमें कवि ने ईश्वर महिमा, स्वर्ग नरक की कल्पना, सामाजिकता, अवतारों का रहस्य, दर्शन की गहनता, धर्म का स्वरूप आदि विषयों पर गंभीर विवेचन किया है। इस काव्य ग्रंथ में ओजगुण की प्रधानता है। आध्यात्मिक और आधिभौतिक विचारों की गहनता के कारण इसमें सरसता कम है। भाषा सरल है और कहीं-कहीं क्लिष्ट संस्कृतमयी है। अलंकार भावों के अनुकूल हैं तथा मात्रिक और वर्णिक दोनों ही छन्द प्रयुक्त हुए हैं। प्रकृति के भी बड़े ही सजीव और आकर्षक चित्र कवि ने उपस्थित किये हैं। यथा :—

> प्रकृति वधू ने अस्ति वसन बदला छिन पहना।
> तन से दिया उतार तारकावलि का गहना॥
> उसका नव अनुराग नील नभतल पर छाया।
> हुई रागमय दिशा, निशा ने बदन छिपाया॥

उपर्युक्त छन्द में कवि ने प्रकृति को सचेतन मानकर उसकी सजीव कल्पना की है। इस प्रकार कवि ने अपने इस काव्य में अपना सुधारवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत कर जनता के अन्ध विश्वास, धर्मान्धता, रूढ़िवादिता आदि को दूर करने का प्रयास किया है।

हरिऔध की भाषा—हरिऔध जी के काव्यों में भाषा के मुख्यतः चार रूप पाये जाते हैं—उर्दू से प्रभावित हिन्दी, ब्रजभाषा, सरल मुहाविरेदार हिन्दी और तत्सम शब्द प्रधान हिन्दी। 'चुभते चौपदे', 'चोखे चौपदे', 'बोलचाल' आदि काव्यों की भाषा उर्दू शैली से प्रभावित हिन्दी है। रस-कलस में उनकी [illegible] ब्रजभाषा है। हरिऔध जी की ब्रजभाषा परिष्कृत [illegible] है। [illegible] की तरह उन्होंने भाषा का रूप विकृत नहीं किया और न उसमें [illegible] के शब्दों को [illegible] ही की। मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से [illegible] बना दिया [illegible] अलंकारों का [illegible] प्रयोग, [illegible] और [illegible]

है। 'प्रियप्रवास और 'बेनिस का बाँका' के अतिरिक्त उनके शेष खड़ी बोली के ग्रंथों में सरल हिन्दी है। प्रियप्रवास की भाषा तत्सम शब्द प्रधान खड़ी बोली है। यथा—

'रूपोद्यान-प्रफुल्ल-प्राय कलिका राकेन्दु-बिंबानना।
तन्वंगी कलहासिनी सुरसिका क्रीड़ा-कला पुत्तली॥

यह भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों से इतनी दब गई है कि कहीं-कहीं यह मालूम नहीं होता कि उनकी रचना हिन्दी में है या संस्कृत में। उनकी इस प्रकार की भाषा में व्याकरण सम्बन्धी भूलें भी कहीं-कहीं हुई हैं। उनका शब्द-चयन भी शिथिल है। ब्रजभाषा के कुछ शब्द भी खड़ी बोली में आगये हैं जो खटकते हैं। किन्तु भाषा का यह रूप सर्वत्र नहीं पाया जाता। उनकी भाषा में कतिपय दोष होते हुए भी यह कहा जाता है कि हरिऔध जी का अपनी भाषा पर पूरा अधिकार था। भाषा के क्षेत्र में उनका प्रयास नवीन और मौलिक है। उनकी भाषा भावानुकूल, प्राञ्जल, प्रौढ़, और सरस है।

हरिऔध जी की शैली—काव्य शास्त्र की दृष्टि से हरिऔध जी की शैली के मुख्य तीन रूप मिलते हैं:—प्रबन्ध काव्य, प्रबन्ध-मुक्तक और मुक्तक। 'प्रियप्रवास' और 'वैदेही वनवास' उनके प्रबन्धकाव्य हैं। प्रियप्रवास में कवि ने संस्कृत वर्ण वृत्तों का और वैदेही वनवास में हिन्दी छन्दों का प्रयोग किया है। प्रबन्ध-मुक्तक छप्पय छन्द में लिखे गये हैं। मुक्तकों में कवि ने कवित्त, सवैया, दोहा, सोरठा आदि छन्दों को अपनाया है और चौपदे में उर्दू काव्य की शैली का प्रयोग है। संक्षेप में हरिऔध जी अपनी शैली के स्वयं निर्माता हैं। उनकी काव्यधारा विभिन्न शैलियों में विभिन्न दिशाओं की ओर प्रवाहित हुई है। उनके कवि जीवन की यही विशेषता है। भाव, भाषा और कला के क्षेत्र में उनके प्रयोग प्रत्येक दृष्टि से मौलिक एवं सफल हैं। निस्सन्देह ही हिन्दी-जगत् में उनका व्यक्तित्व महान् है।

आलोचनात्मक प्रश्नोत्तर

प्रश्न १—"प्राकृतिक पदार्थों को दूत या दूती बनाकर भेजने की प्रथा
रतीय काव्यों में अत्यन्त प्राचीन है। इसी दीर्घ परम्परा के अनुकूल 'हरि-
यजी' ने अपने 'प्रिय प्रवास' में पवन को दूती बनाकर भेजने की कल्पना
है।" इस कथन की समीक्षा करते हुए उपाध्यायजी के पवन-संदेश का महत्व
र्धारित कीजिये। (विशेष महत्वपूर्ण)

उत्तर—प्राकृतिक पदार्थों को दूत या दूती बनाकर भेजने की प्रथा भारतीय
यों में अत्यन्त प्राचीन काल से है। सबसे पहले हमें इसका सूत्र ऋग्वेद में
ता है जहाँ प्रकृति के पदार्थों को अपना संदेश देवताओं तक ले जाने वाला
ा गया है। 'अग्निसूक्त' में कहा है कि "अग्नि प्राचीन एवं नवीन ऋषियों
प्रार्थना एवं स्तुति करने योग्य है। वह अग्नि समस्त देवताओं को यहाँ
कर लावे, जिससे वे हमारे यज्ञ को पूर्ण करें।" यहाँ अग्नि को देवताओं के
यज्ञ का संदेश ले जाने वाला माना गया है। इसी आधार पर आगे चलकर
यों में पशु, पक्षी, बानर, मेघ आदि को संदेश लेकर जाता हुआ चित्रित
गया है। बाल्मीकि-रामायण में भगवान राम का संदेश हनुमान जी
ाते हैं और सीता जी रामजी की सारी व्यथा सुना देते हैं। महाभारत
स पक्षी राजा नल का संदेश लेकर दमयन्ती के पास जाता है। महाकवि
दास के 'मेघदूत' काव्य में मेघ विरही यक्ष का संदेश अलकापुरी में
ी पत्नी के पास ले जाता है। कालिदास के 'मेघदूत' के ही आधार पर
चलकर 'पवनदूत' 'हंसदूत', 'उद्धवदूत' आदि काव्यों की रचना हुई।

संस्कृत साहित्य की भाँति हिन्दी साहित्य में भी यह परम्परा प्रारम्भ से
चलित है। सबसे पहले 'पृथ्वीराज रासो' महाकाव्य में एक तोता महाराज
ाज का संदेशा लेकर पद्मावती के पास जाता है। मैथिल कोकिल
वि विद्यापति ने भी अपने पदों में विरहिणी के पास कौए को उसके
म का संदेश लेकर आने वाला माना है। जायसी के 'पद्मावत' में तोता
ती का संदेश लेकर रत्नसेन के पास जाता है। इसी प्रकार अन्य सूफी
ने भी अपने-अपने काव्यों में इस प्रणाली को अपनाया है। महाकवि

तुलसीदास जी ने अपने 'रामचरितमानस' में हनुमान और अङ्गद जैसे वानरों को राम का संदेश लेकर क्रमशः सीता जी और रावण के दरबार में भेजा है। रीतिकालीन कवि घनानन्द की विरहिणी नायिका भी पवन को उसके विरह का संदेश ले जाने के लिये आग्रह करती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि हरिऔध जी के सामने प्राकृतिक पदार्थों द्वारा संदेश भेजने की एक दीर्घ-परम्परा विद्यमान थी। इसी परम्परा के अनुसार विरह विधुरा राधा का अनुकूल प्रसङ्ग देखकर उन्होंने 'प्रिय प्रवास' में पवन द्वारा सन्देश भेजने की कल्पना की है। हरिऔध जी के 'पवन दूती' प्रसङ्ग पर कालिदास के मेघदूत का अत्यधिक प्रभाव है। उदाहरण के लिये मेघदूत में यक्ष मेघ से कहता है कि "हे मेघ! मेरे प्रिय कार्य को शीघ्र पूरा करने की उत्कट लालसा तुम्हारे हृदय में विद्यमान है, फिर भी मैं यह देख रहा हूँ कि विकसित कुटज के पुष्पों से परिपूर्ण सुगन्ध वाला प्रत्येक पर्वत तुम्हें आकर्षित करके मार्ग में तुम्हारे विलम्ब का कारण होगा। अतः आँसुओं से परिपूर्ण नयन वाले मयूरों की वाणियों का स्वागत करके तुम किसी रीति से शीघ्र ही जाने की चेष्टा करना।"

हरिऔधजी ने इसी भाव को अपने 'पवन-दूती' प्रसंग में किंचित परिवर्तन के साथ निम्नानुसार व्यक्त किया है—

"ज्यों ही मेरा भवन तज तू अल्प आगे बढ़ेगी।
शोभावाली अमित कितनी कुंज-पुंजें मिलेंगी॥
प्यारी छाया मृदुल स्वर से मोह लेंगी तुझे वे।
तो भी मेरा दुख लख वहाँ तू न विश्राम लेना।

इसके अतिरिक्त कुछ और भी उदाहरण देखिये। 'मेघदूत में' यक्ष मेघ से कहता है—'हे मेघ! कृषि कार्य का फल तुम्हारे अधीन है। इसलिये भ्रुविलासों से अनभिज्ञ कितनी ही कृषक रमणियाँ बड़े प्रेम के साथ तुम्हें आँखों से पीती हुई देखेंगी। उस समय हल जोतने से उत्पन्न सुरभि वाले उन्नत क्षेत्र में जल वृष्टि करके तुम शीघ्र ही उत्तर दिशा की ओर चल देना।'

हरिऔधजी ने 'प्रियप्रवास' में इसी भाव को राधा द्वारा पवन के सम्मुख इस प्रकार व्यक्त कराया है—

'कोई क्लान्ता कृषक ललना खेत में जो दिखावे।
धीरे-धीरे परस उसकी क्लान्तियों को मिटाना॥
जाता कोई जलद यदि हो व्योम में तो उसे ला।
छाया द्वारा सुखित करना, तप्त भूतांगना को॥

'मेघदूत' में यक्ष मेघ से कहता है कि "हे मेघ! यदि तुम महाकाल
ान्दिर में सायंकाल के समय न पहुँचकर किसी अन्य समय पहुँचो, तो क
म सायंकाल तक वहाँ अवश्य रुकना, क्योंकि प्रदोष काल में महादेव की
जा के समय नगाड़े की ध्वनि का कार्य अपनी गर्जना-ध्वनि द्वारा पूरा क
 कारण तुम्हें अपनी गंभीर गर्जना का अखंड फल प्राप्त होगा।"-
यप्रवास' में राधा द्वारा पवन के सम्मुख यही भाव इस तरह प्र
या गया है—

'तू पूजा के समय मथुरा-मन्दिरों-मध्य जाना।
नाना वाद्यों के मधुर-स्वर की मुग्धता को बढ़ाना॥
किम्वा ले के रुचिर तरु के शब्दकारी फलों को।
धीरे-धीरे रुचिर-रव से मुग्ध हो हो बजाना॥

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि हरिऔधजी के 'पवन-दूती' प्रसङ्ग प
'घदूत' का अत्यधिक प्रभाव है। जिस प्रकार कालिदास ने यक्ष द्वारा मेघ को
लोक तक पहुँचाने में सारे मार्ग की सुरम्यता का वर्णन किया है उसी प्रका
िऔध ने राधा द्वारा पवन को श्रीकृष्ण के पास मथुरापुरी भेजते हुये मार्ग
पड़ने वाले वृक्षों, बागों, वनों, उपवनों, यमुना आदि का बड़ा ही रोचक वर्णन
या है। मथुरापुरी में पहुँचने पर श्याम को किस तरह पहचान सकेगी इसके
ये भी हरिऔधजी ने 'मेघदूत' की भाँति मुद्राओं और वस्त्रों का आश्रय लिया
। श्याम का परिचय देती हुई राधा पवन से कहती है—

'तू देखेगी जलद तन को जा वहीं तद्गता हो।
होंगे लोने नयन उनके ज्योति-उत्कीर्ण कारी॥
मुद्रा होगी वर-वदन की मूर्ति-सी सौम्यता की।
सीधे-सीधे वचन उनके सिक्त पीयूष होंगे॥

[library stamp]
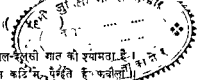
नीले फूले कमल-दल-सी गात की श्यामता है।
पीला प्यारा वसन कटि में पैन्हते हैं फबीला॥

'मेघदूत' के अतिरिक्त घनानंद का भी प्रभाव इस प्रसंग पर पड़ा हुआ प्रतीत होता है। उदाहरण के लिये घनानंद की विरहिणी नायिका पवन से कह रही है—

"एरे बीर पौन! तेरो सबै ओर गौन।
बीर तो सौ ओर कौन मनै ढरकौही बानि दै॥
× × ×
विरह-विथा की मूरि आँखिन मैं राखौं पूरि।
धूरि तिन्ह पायन की हा! हा! नैकु आनि दै॥

हरिऔधजी की राधा भी पवन से यही याचना कर रही है—

'यों प्यारे को विदित करके सर्व मेरी व्यथाएँ।
धीरे-धीरे वहन करके पाँव की धूलि लाना॥
थोड़ी सी भी चरण रज जो ला न देगी हमें तू।
हा! कैसे तो व्यथित चित को बोध मैं दे सकूँगी॥
जो ला देगी चरण रज तो तू बड़ा पुण्य लेगी।
पूता हूँगी भगिनि उसको अङ्ग में मैं लगाके॥
पोतूँगी जो हृदय-तल में वेदना दूर होगी।
डालूँगी मैं शिर पर उसे आँख में ले मलूँगी॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि हरिऔधजी के इस वर्णन पर उनके पूर्ववर्ती कवियों का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इसमें कुछ नवीनता और मौलिकता नहीं है। कवि ने राधा द्वारा पवन को विरह-व्यथा का संदेश श्याम तक पहुँचाने के लिये जो-जो युक्तियाँ एवं क्रियायें कथन कराई हैं वे अत्यन्त ही मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी हैं। उनमें कवि की नवीन उद्भावनायें तथा मौलिकता दिखाई देती है। कालिदास ने तो केवल मेघोचित कार्यों का दिग्दर्शन कराया है जबकि 'हरिऔधजी' ने पवन को नाना प्रकार से दूत कार्य करने के लिये मार्मिक युक्तियाँ दी हैं। उदाहरण के लिये राधा पवन से कह रही है कि यदि तू और कुछ न कर सके तो केवल किसी वृक्ष के

नवल पत्ते को जो अब धीरे-धीरे पीला हो रहा हो प्रिय के युगल द
ला कर रखदे और इस प्रकार विरह दुख में प्रोषिता के समान
पीले पड़ जाने को व्यक्त करते कहीं प्रिय का मधुर मिलन संभ
भाव की व्यंजना कवि ने कितने आकर्षक शब्दों में की है —

"कोई पत्ता नवल तरु का पीत जो हो रहा हो।
तो प्यारे के दृग युगल के सामने ला उसे ही॥
धीरे-धीरे संभाल रखना औ उन्हें यों बताना।
पीला होना प्रबल दुख से प्रोषिता सा हमारा॥

कितनी मौलिक कल्पना है कवि की। अंत में राधा ने श्रीकृष्ण' के
से उनकी चरण-रज, मृदुल-स्वर, नवल-तन की सुगन्धि, अंगरागादि के पतित
या कंठ संलग्न पुष्पमाला का कोई विकच पुष्प आदि में से कोई एक
लाने का ही पवन से आग्रह किया है। यदि पवन यह करने में भी असमर्थ
तो वह केवल परमप्रिय श्रीकृष्ण के 'कमल-पग' का स्पर्श मात्र ही कर आवे—

पूरी होवें न यदि तुझसे अन्य बातें हमारी।
तो तू मेरी विनय इतनी मानले औ चली जा॥
छू के प्यारे कमल पग को प्यार के साथ आजा।
जी जाऊँगी हृदय तल में मैं तुझी को लगाके॥

राधा उस पवन को ही अपने हृदय से लगाकर जीवन प्राप्त कर सकती
है। राधा के इस अन्तिम सन्देश में कितनी यथार्थता, आत्मसमर्पण, भावुकता
और प्रेम-पिपासा भरी हुई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हरिऔधजी के 'पवन-दूती' प्रसंग में पर्याप्त
सरसता, अनुभूति, मौलिकता और नवीनता है। यद्यपि इन नवीन नवीन उक्तियों
से राधा के विरह-वर्णन में कुछ अस्वाभाविकता भले ही आगई है और विरह
की सुन्दर अभिव्यक्ति नहीं हो पाई है। फिर भी हरिऔधजी का यह वर्णन
अपनी निजी विशेषता रखता है।

प्रश्न २—"हरिऔधजी के हृदय में प्राकृतिक शोभा के लिये एक आकर्षण
था। आप प्रकृति की माधुरी पर मुग्ध रहा करते थे। इसीलिये आपने

प्रकृति के अत्यन्त सजीव एवं मनोरम रूप अङ्कित किये हैं।" इस कथन की उद्धरण देते हुये समीक्षा कीजिये।

अथवा

प्रश्न ३—"भारतीय काव्य के अन्तर्गत प्रकृति चित्रण की जितनी भी शैलियाँ प्रचलित हैं हरिऔधजी ने उन सभी को अपना कर प्रकृति का बड़ा ही मार्मिक तथा हृदयग्राही वर्णन किया है।" उद्धरण देते हुये इस कथन की विवेचना कीजिये।

उत्तर—मानव और प्रकृति का साहचर्य चिरकाल से है। मानव ने सबसे पहले प्रकृति की गोद में ही आँखें खोलीं और उसी से प्रेरणा ग्रहण कर वह सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में आगे बढ़ा है। इसीलिये मानव और प्रकृति का अटूट सम्बन्ध है। प्रकृति के असीम वैभव से मानव अनुभूति और प्रेरणा प्राप्त करके समयानुसार उस अनुभूति को काव्यश्री से सम्पन्न कर सुन्दरतम रूप में अभिव्यक्त कर देता है जिसके फलस्वरूप साहित्य में विराट काव्य का विवेचन होता चला आया है।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल से ही काव्यों में प्रकृति नाना रूपों में चित्रित की गई है। कहीं चेतन रूप में और कहीं अचेतन रूप में, कहीं स्वतंत्र रूप में, और कहीं परतंत्र रूप में, कहीं संवेदनात्मक रूप में और कहीं प्रतीकात्मक रूप में। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय काव्य के अन्तर्गत प्रकृति कई रूपों में प्रस्तुत की गई है जिनमें से मुख्य रूप ये हैं—

१. आलम्बन रूप में, २. उद्दीपन रूप में, ३. संवेदनात्मक रूप में, ४. वातावरण निर्माण के रूप में, ५. रहस्यात्मक रूप में, ६. प्रतीकात्मक रूप में, ७. अलंकार योजना के रूप में, ८. मानवीकरण के रूप में, ९. लोक-शिक्षा के रूप में और १०. दूत अथवा दूती के रूप में। आधुनिक युग के प्रारम्भ में हरिऔधजी ने उपर्युक्त सभी रूपों में प्रकृति के अनेकों ही भव्य तथा भयंकर चित्र उपस्थित किये हैं। हम यहाँ उनके प्रकृति-चित्रण के प्रत्येक रूप पर संक्षेप में विचार करेंगे।

आलम्बन रूप में—प्रकृति को आलम्बन रूप में वर्णन करने से तात्पर्य है प्रकृति को स्वतंत्र रूप में चित्रण करना। आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण

करने की दो रीतियाँ हैं—१. बिम्ब-ग्रहण प्रणाली और २. वस्तु परिगणन प्रणाली। प्रकृति-चित्रण की इन दोनों ही प्रणालियों के माध्यम से हरिऔधजी ने अपने काव्य ग्रंथों में प्रकृति के अनेकों मनोरम एवं उग्र चित्र प्रस्तुत किये हैं, उदाहरण के लिये 'प्रिय प्रवास' में गोवर्द्धन पर्वत की शोभा का देखिये—

> ऊँचा शीश सहर्ष शैल करके था देखता व्योम को।
> या होता अति ही सगर्व वह था सर्वोच्चता दर्प से।
> या वार्ता यह था प्रसिद्ध करता सामोद संसार में।
> मैं हूँ सुन्दर मानदण्ड ब्रज की शोभा मयी भूमि का।
>
> × × × ×
>
> पानी निर्झर का समुज्ज्वल तथा उल्लास की मूर्ति था।
> देता था गतिशील-वस्तु-गरिमा यों प्राणियों को बता।
> देता था उसका प्रवाह उर में ऐसी उठा कल्पना।
> धारा है वह मेरु से निकलती स्वर्गीय आनन्द की।
> या है भूधर सानुराग द्रवता अश्रु स्त्रियों के लिये।
> आँसू है वह ढालता विरह से किम्वा ब्रजाधीश के॥

बिम्ब ग्रहण प्रणाली द्वारा प्रकृति के मनोरम रूप का कैसा सजीव और संश्लिष्ट चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है। गोवर्द्धन पर्वत की अनुपम छवि को मानों सजीवता प्रदान करदी है। उसकी अङ्क में से प्रसूत होने वाले झरने शैलेन्द्र का यशोगान करते से प्रतीत होते हैं। झरनों के जल प्रवाह को बहते देखकर ऐसी कल्पना उठने लगती है कि मानों झरनों के रूप में स्वर्गीय आनन्द की धारा इस गोवर्द्धन पर्वत से निकल कर बह रही है। अथवा कृष्ण के वियोग में रात-दिन रोते हुए ब्रजवासियों को देखकर यह भी झरनों के प्रवाह के रूप में श्रीकृष्ण के लिये आँसू बहाता सा दिखाई दे रहा है। प्रकृति का ऐसा मनोहारी और संश्लिष्ट चित्र किस सहृदय के मानस पटल पर अंकित न होगा।

इसी बिम्ब-ग्रहण-प्रणाली के अंतर्गत कवि ने प्रकृति के भयंकर रूप के चित्र भी प्रस्तुत किये हैं। 'प्रिय प्रवास' में कवि ने श्रीकृष्ण के मथुरा जाने का

निश्चय होते ही गोकुल की उस भयानक रात्रि का बड़ा ही सजीव और संश्लिष्ट चित्र अंकित किया है। देखिये उस रात्रि को—

प्रकटती बहु भीषण मूर्ति ।
कर रहा भय तांडव नृत्य था ॥
विकट दन्त भयंकर प्रेत भी।
विचरते बहु पादप मूल थे ॥
बदन व्यादन पूर्वक प्रेतिनी।
भय प्रदर्शन थी करती महा ॥
निकलती जिससे अविराम थी।
अनल की अति त्रास करी-शिखा ॥
विकट दंत दिखाकर खोपड़ी।
कर रही अति-भैरव-हास थी ॥
विपुल अस्थि समूह विभीषिका ।
वपन थी करती रस रौद्र की ॥

सारे गोकुल ग्राम में उसी रात्रि का भय तांडव नृत्य कर रहा था। विकट दाँत दिखाते हुए प्रेत विचरण कर रहे थे और प्रेतनियाँ जिनके मुख से अग्नि की ज्वाला निकल रही थी अपने मुँह फाड़े हुये भय प्रदर्शित कर रहीं थी। श्मशान में पड़ी हुई खोपड़ियाँ विकट दाँत दिखाकर अत्यन्त अट्टहास कर रही थीं। हड्डियों का समूह देखकर भय लगता था। इस प्रकार कवि ने यहाँ रात्रि की भयंकरता, और विकरालता का एक चित्र सा अंकित कर दिया है। प्रकृति के उग्ररूप का ऐसा संश्लिष्ट चित्र और कहाँ देखने को मिलेगा।

वस्तु-परिगणन-प्रणाली के अंतर्गत भी कवि ने प्रकृति के सौम्य और भयंकर दोनों पदार्थों के नाम गिनाये हैं। उदाहरण के लिये 'प्रियप्रवास' के नवम सर्ग में गोवर्द्धन पर्वत पर खड़े हुये वृक्षों की नामावली देखियेः—

जंबू, अम्ब, कदम्ब, फलसा जंबीर औ आँवला,
लीची दाड़िम नारिकेल इमली और शिशिपा इंगुदी।
नारंगी अमरूद बिल्व बदरी सागौन शालादि भी।
श्रेणी बद्ध तमाल ताल कदली औ शाल्मली थे खड़े।

से अपनी विरह-व्यथा का निवेदन करती है। इसी प्रकार भ्रमर, मुरली, पवन, यमुना, चन्द्र-ज्योत्स्ना आदि प्रकृति के सुखदायी पदार्थ विरहिणी के मनोभावों को उद्दीप्त करके उसके लिये कितने दुखद और सन्तापकारी होते हैं देखिये—

'रोई आके कुसुम-दिग और भृङ्ग के साथ बोली।
वंशी द्वारा भ्रमित वन के बात की कोकिला से।
देखा प्यारे कमल-पग के अंक को उन्मना हो।
पीछे आयी तरणि-तनया-तीर उत्कंठिता सी॥

इसी प्रकार कवि ने 'प्रियप्रवास' के प्रारम्भ में श्रीकृष्ण के संयोग के समय संध्या का बड़ा ही आनन्ददायक वर्णन किया है—

'गगन-मण्डल में रज छा गई। दशदिशा बहु शब्दमयी हुई।
विशद-गोकुल के प्रति-गेह में। बह चला वर-स्रोत विनोद का॥

कवि के इस वर्णन में कितनी मादकता, प्रफुल्लता और मनोरंजकता भरी हुई है। होना भी चाहिये क्योंकि ब्रजजन जीवनाधार श्रीकृष्ण प्रिय ग्वाल बालों, सुन्दर धेनु और वत्सों के साथ गोचारण के पश्चात् संध्या को गोकुल में आते हैं। श्रीकृष्ण के रूप लावण्य के अवलोकन का यह समय क्यों न आनन्ददायक होगा। अतः संयोग और वियोग के समय प्रकृति के बड़े ही मार्मिक चित्र कवि ने उद्दीपन रूप में अंकित किये हैं।

संवेदनात्मक रूप में—जब प्रकृति मानव-जीवन से पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर लेती है अर्थात् उनके सुख में सुखी और दुःख में दुःखी दिखाई देती है तब प्रकृति का वह चित्रण संवेदनात्मक रूप में कहलाता है। हरिऔधजी ने संवेदनात्मक रूप में भी प्रकृति के अत्यन्त सजीव और मार्मिक चित्र अंकित किये हैं। देखिये—

विकलता उनकी अवलोक के रजनि भी करती अनुताप थी।
निपट नीरव हो मिष ओस के नयन से गिरता बहुवारि था।
विपुल नीर बहाकर नेत्र से मिष कलिंद-कुमार-प्रवाह के।
परम कातर हो रह मौन ही रुदन थी करती ब्रज की धरा॥

श्रीकृष्ण के मधुरागमन का समाचार प्राप्त कर माता यशोदा के नेत्रों से अविराम अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है, वे बार-बार मूर्छित हो जाती हैं,

उन्हें मलिन और व्याकुल होकर रजनी भी अनुराग करती हुई ओस बिन्दुओं के बहाने आँसू बहाने लगती है। इसी प्रकार यमुना भी प्रवाह के बहाने सारी ब्रज भूमि की अत्यन्त दुःखी होकर रुदन करती हुई प्रतीत होती है। यहाँ प्रकृति मानव के दुःख में दुःखी होती हुई चित्रित की गई है। अब उसका एक चित्र और देखिये जिसमें वह मानव के हास-विलास के समय उल्लसित दिखाई दे रही है—

जब हुआ ब्रज जीवन जन्म था,
ब्रज प्रफुल्लित था कितना हुआ।
उमगती कितनी कृति मूर्ति थी,
पुलकते कितने नृप नन्द थे॥
विपुल सुन्दर - वन्दनवार से,
सकल द्वार बने अभिराम थे।
विहँसते ब्रज - सद्म - समूह के,
वदन में दसनावलि थी लसी॥

श्री कृष्ण जन्म के समय समस्त ब्रज मारे हर्ष के उल्लसित दिखाई दे रहा था। घरों के दरवाजों पर लगे हुये वन्दनवारों के रूप में सारा ब्रज-सदन-समूह हँसता सा प्रतीत होता था। घरों पर लगी हुई वन्दनवारें मानो मुख के चमकते हुये दाँत थे। इसी प्रकार 'प्रियप्रवास' के नवम सर्ग में उद्धव को श्रीकृष्ण के वियोग के कारण वृक्षों, पुष्पों, लताओं, सरों, खगों, मृगों आदि में एक विमूढ़ खिन्नता सी दिखाई दे रही थी जो उनके हृदय में गुप्तरीत से विरक्ति बढ़ाती जा रही थी। देखिये—

परन्तु वे पादप में प्रसून में फलों दलों बेलि लता समूह में।
सरोवरों में सरि में सुमेरु में खगों मृगों में बन में निकुंज में।
बसी हुई एक विमूढ़ खिन्नता विलोकते थे निज सूक्ष्म-दृष्टि से।
शनैः-शनैः जो बहु गुप्त रीति से रही बढ़ाती उर की विरक्ति को।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हरिऔधजी ने संवेदनात्मक रूप में भी प्रकृति के बड़े ही सजीव वर्णन किये हैं।

वातावरण निर्माण के रूप में—कविजन हर्ष, शोक, आनन्द, उत्साह

आदि का वातावरण निर्माण करने के लिये प्रायः अपने काव्यों में प्रकृति का उपयोग किया करते हैं। हरिऔधजी ने भी वातावरण की सृष्टि करने के लिये अत्यन्त भव्य, समुज्ज्वल एवं गम्भीर चित्र अंकित किये हैं। उनके 'प्रियप्रवास' महाकाव्य में से यहाँ एक दो उद्धरण देना समीचीन होगा—

समय था सुनसान निशीथ का।
अटल भूतल में तमराज्य था।
प्रलयकाल समान प्रसुप्त हो।
प्रकृति निश्चल, नीरव, शान्त थी॥
× + ×
इस तमोमय मौन निशीथ की।
सहज-नीरवता क्षिति-व्यापिनी।
कलुषिता ब्रज की महि के लिये।
तनिक थी न विराम प्रदायिनी॥

यहाँ सुनसान निशीथ की अत्यन्त नीरवता, तमराज्य की अटलता, प्रकृति की निश्चलता तथा विकटता से युक्त प्रलयकाल जैसा वर्णन करके कवि ने विषाद, शोक तथा खिन्नता के वातावरण की सृष्टि की है। प्रकृति की इस विषादमयी स्थिति की भाँति ही नन्द और यशोदा भी विषाद और खिन्नता से पूर्ण हैं और समस्त ब्रजभूमि भी शोकाभिभूत होकर मौन बनी हुई है। इसी प्रकार कवि ने राधा की सुन्दर शान्त वाटिका के सात्विक वातावरण का निर्माण निम्न छन्दों में किया है:—

वसंत को पा यह शांत वाटिका।
स्वभावतः कांत नितान्त थी हुई।
परन्तु होती उसमें स-शांति थी।
विकास की कौशल-कारिणी-क्रिया॥
× × ×
प्रसून थे भाव-समेत फूलते,
× × ×

स-शांति आते उड़ते निकुंज में,
स-शांति जाते ढिंग थे प्रसून के।
बने महा-नीरव, शांत संयमी,
स-शांति पीते मधु थी मिलिन्द थे॥
विनोद से पादप पै विराजना,
विहंगिनी साथ विलास बोलना।
बँधा हुआ संयम-सूत्र साथ था,
कलोलकारी खग का कलोलना॥

यहाँ वसन्त में भी पृथ्वी का शांति से विकसित होना, भौंरों का शांत होकर उड़ना और शांति तथा संयम से मकरंद पान करना, खग वृन्दों का संयमपूर्वक वृक्षों पर निवास करना, कोकिल का यहाँ कभी न कूकना आदि के वर्णन से कवि ने सात्विकी वातावरण की सृष्टि करके राधा की वाटिका को तपोभूमि सा बना दिया है, जहाँ प्रकृति के क्रिया कलाप अत्यन्त शांति, मर्यादा तथा संयमपूर्वक संचालित होते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने वातावरण के निर्माण के रूप में भी प्रकृति के अनेकों गम्भीर और भव्य चित्र अपने काव्य ग्रन्थों में प्रस्तुत किये हैं।

रहस्यात्मक रूप में—जब कवि विश्व के अणु-अणु में व्याप्त उस विराट् सत्ता को प्रकृति के माध्यम से खोजने के लिए अपनी रहस्यमयी दृष्टि डालता है तभी प्रकृति के रहस्यात्मक रूप का चित्रण होता है। किन्तु हरिऔधजी तो स्वभाव से ही प्रकृति की मनोरम छटा में ही उस विराट् सत्ता को देखते आये हैं। वे उसे खोजने कहीं नहीं जाते। अतः उनके काव्य में प्रकृति में रहस्यात्मक रूप को देखने की चेष्टा करना व्यर्थ है।

प्रतीकात्मक रूप में—जहाँ प्रभाव साम्य को लेकर प्रकृति उपादानों—उषा, प्रभात या प्रकाश—का प्रयोग उपमान रूप में सुख, आनन्द या प्रफुल्लता के लिये किया जाता है वहाँ प्रकृति प्रतीकात्मक रूप में चित्रित हुई कही जाती है। इस प्रणाली का अधिक प्रचार छायावादी काव्य के प्रचलन के उपरान्त हुआ है। अतः हरिऔधजी के काव्य में प्रकृति का यह रूप अत्यन्त [illegible] मात्रा में मिलता है। उदाहरण के लिये निम्न छन्द देखिये :—

बहु भयंकर थी वह यामिनी।
विलपते ब्रज भूतल के लिये।
तिमिर में जिसके उसका शशी।
बहु कला युत होकर खो चला॥

उपर्युक्त वर्णन में 'शशि' श्रीकृष्ण का प्रतीक और उसकी कलायें श्याम के गुणों की प्रतीक रूप में वर्णित हैं।

अलंकार योजना के रूप में—काव्य में अलंकार योजना के लिये प्रकृति का प्रयोग सबसे अधिक मात्रा में मिलता है। अन्य कवियों की भाँति हरिऔधजी ने भी प्रकृति के रूढ़िगत उपमानों को बड़ी सजीवता के साथ उचित रूप में प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त प्रकृति से सुन्दर-सुन्दर उदाहरण ग्रहण कर अपनी बातों को बड़े भव्य रूप में रखा है। उदाहरण के लिये जैसे वर्षाऋतु व्यतीत हो जाने पर स्वाँति के जल-कण प्राप्त कर परम तृषिता चातकी थोड़ी सी शांति पा जाती है, वैसे ही अपने पुत्र का दो दिनों में आना श्रवण करके अचेत होती हुई यशोदा स्वल्प आश्वासिता सी दिखाई देने लगीं। कवि ने यही भाव निम्न छन्द में प्रकट किया है :—

जैसे स्वाती-सलिल-कण पा वृष्टि का काल बीते।
थोड़ी सी है परम तृषिता चातकी शांति पाती।
वैसे आना श्रवण करके पुत्र का दो दिनों में।
संज्ञा खोती यशुमति हुईं स्वल्प आश्वासिता सी॥

इसी तरह उदाहरणों, रूपकों आदि के लिये प्रकृति का प्रयोग करते हुये कवि ने बड़ी भव्य और स्वाभाविक अलंकार योजना अपने काव्य-ग्रन्थों में की है। स्थानाभाव के कारण यहाँ केवल सांगरूपक का एक उदाहरण ही प्रस्तुत किया जाता है जिसमें कवि ने प्रकृति के सुन्दर उपादानों का प्रयोग किया है—

'ऊधो मेरा हृदय-तल था एक उद्यान न्यारा।
शोभा देती अमित उसमें कल्पना-क्यारियाँ थीं।
न्यारे-न्यारे-कुसुम कितने भाव के थे अनेकों।
उत्साहों के विपुल विटपी थे महासुग्धकारी।

मतिमत्ता की मधुर महकी मंजु-मालिका थी।
नाना भाँति कलित कलियाँ थीं लगाती उमंगें।
वीरुधों में मधुर दिखतीं वासना-बेलियाँ थीं।
महत्ता के विहग उनके मंजु-भाषी बड़े थे॥

इसमें उद्यान का आरोप कर कवि ने कल्पना को क्यारियाँ, भावों के कुसुम, उत्साहों की विपुल विटपी, मतिमत्ता की मालिका, उमंगों की कलियाँ, वासना की बेलियाँ तथा महत्ता को पक्षी आदि बनाकर प्रकृति के उपमानों द्वारा मनोभावों का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है।

मानवीकरण के रूप में—प्रकृति के उपादानों पर मानव-व्यापारों का आरोप करके उनकी गति विधियों के उल्लेख करने को मानवीकरण कहा जाता है। आधुनिक युग में प्रकृति-चित्रण की यह प्रणाली अत्यधिक प्रचलित है। इसका मुख्य कारण यह है कि आधुनिक कवि प्रकृति को एक अखंड चेतन शक्ति मानते हैं। इसलिये वे उस पर मानवोचित व्यापारों का आरोप कर उसे अपने काव्यों में स्थान देते हैं। हरिऔधजी ने भी प्रकृति पर मानव-व्यापारों का आरोप कर उसे अनेक स्थलों पर मानवीकरण के रूप में चित्रित किया है। 'प्रियप्रवास' के नवम सर्ग में नारंगी, निम्ब, लीची, दाड़िम, शाल, बिल्व, शाल्मली, मधूक, वट आदि वृक्षों का वर्णन कवि ने उन पर मानवोचित व्यापारों का आरोप करके किया है। यथा :—

सुवर्ण-ढाले-तमगे कई लगा।
हरे सजीले निज-वस्त्र को सजे॥
बड़े अनूठेपन साथ था खड़ा।
महा रँगीला तरु नागरंग का॥

यहाँ नारंगी के वृक्ष को सोने के कई तमगे लगाये हरे सजीले वस्त्र पहने बड़े अनूठे पन से खड़ा हुआ अंकित किया है। इसी प्रकार कवि ने गोवर्द्धन पर्वत को भी एक गिरिराज या पर्वतों के सम्राट् की भाँति अंकित किया है। देखिये :—

ऊँचा शीश सहर्ष शैल करके था देखता व्योम को।
या होता अति ही स-गर्व वह था सर्वोच्चता दर्प से॥

या वार्ता यह था प्रसिद्ध करता सामोद संसार में ॥
मैं हूँ सुन्दर मान दण्ड ब्रज की शोभामयी भूमि का ॥

× × ×

सद्भावा श्रयता अचिन्त्य-दृढता निर्भीकता उच्चता।
नाना-कौशल-मूलता अटलता न्यारी-क्षमाशीलता ॥
होता था यह ज्ञात देख उसकी शास्ता समा-भगिमा।
मानों शासन है गिरीन्द्र करता निम्नस्थ-भूभाग का ॥

यहाँ क्षमाशीलता, निर्भीकता, उच्चता, शास्ता-समा-भंगिमा आदि मानवीय गुणों का आरोप करके गोवर्द्धन पर्वत को निम्नस्थ-भू भाग का शासन कर्ता चित्रित किया है जो निश्चय ही बड़ा मनोरम और मार्मिक है।

लोक-शिक्षा रूप में—प्रकृति के द्वारा जन-साधारण को उपदेश देने का कार्य प्रायः सभी बड़े-बड़े कवियों ने किया है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने वर्षा का वर्णन करते हुये सर्व साधारण को बड़ी ही सरलता से शिक्षा प्रदान की है। यथा—

कृषी निरावहिं चतुर किसाना।
जिमि बुध तजहिं मोह मद माना ॥
बुंद अघात सहैं गिरि कैसे।
खल के वचन संत सह जैसे ॥ आदि

इसी प्रकार उनके शरद ऋतु के वर्णन में भी हम यही बात देखते हैं। हरिऔधजी ने भी लोक शिक्षा के रूप में प्रकृति का उपयोग किया है। यथा—

कु-अंगजों की बहु-कष्ट दायिता।
बता रही थी जन नेत्रवान को ॥
स्वकंटकों से स्वयमेव सर्वदा।
विदारिता हो 'बदरी द्रुमावली ॥

यहाँ बेर का वृक्ष अपने काँटों से स्वयं विदीर्ण होकर यह बता रहा था कि बुरे अंग वाले बड़े कष्टदायक होते हैं। इसी प्रकार आँवले के वृक्ष का वर्णन भी देखिये—

दश्न पलों की बहुधा अपक्वता।
स्वपतियों की स्थिरता-विहीनता॥
बता रहा था चल चित्तवृत्ति के।
उतावलों की करतूत आँवला॥

यहाँ आँवले के वृक्ष का वर्णन कर कवि ने चंचल स्वभाव वाले उता व्यक्तियों की करतूतों तथा उनकी स्थिरता-विहीनता की ओर संकेत करते बताया है कि चंचल करतूतों के कारण ही ऐसे व्यक्तियों को सफ प्राप्त नहीं होती।

दूती रूप में—प्रकृति चित्रण की यह प्रणाली बहुत प्राचीन है। महाक कालिदास का 'मेघदूत' काव्य इसका प्रमाण है। हरिऔधजी ने भी अपने प्रि प्रवास महाकाव्य में इस प्रणाली को अपनाया है। उन्होंने पवन, कोकि और यमुना आदि के द्वारा श्रीकृष्ण के पास सन्देश भेजने का वर्णन करते प्रकृति के दूती रूप का अत्यन्त ही मनोरम एवं भव्य वर्णन किया है। यथा:-

पवन दूती द्वारा—तू जाती है सकल थल ही वेग वाली बड़ी है।
तू है सीधी तरल हृदया ताप उन्मूलनी है॥
मैं हूँ जो मैं बहुत रखती वायु तेरा भरोसा।
जैसे हो ऐ भगिनि बिगड़ी बात मेरी बनादे॥

कोकिल द्वारा—नहीं-नहीं है मुझ को बता रही।
नितान्त तेरे स्वर की अधीरता॥
वियोग से है प्रिय के तुझे मिली।
अधाकिता, कातरता मलीनता॥
अतः प्रिये तू मधुरा तुरन्त जा।
सुना स्व-वेधी-स्वर जीवितेक को॥
अभिज्ञ वे हों जिससे वियोग की।
कठोरता, व्यापकता, गंभीरता॥

यमुना द्वारा—तव तट पर आके नित्य ही कान्त मेरे।
पुलकित बन भावों में पगे घूमते हैं॥

यक दिन उनको पा प्रति जी से सुनाना ।
कल ध्वनि द्वारा सर्व मेरी व्यथायें ॥

इस प्रकार हम देखते है कि हरिऔधजी ने प्रकृति चित्रण की समस्त प्रचलित प्रणालियों का प्रयोग करते हुये प्रकृति के अनेकों मव्य एवं उग्ररूप अपने महाकाव्यों में चित्रित किये हैं जो उनके प्रकृति प्रेम के द्योतक हैं ।

प्रश्न ४—हरिऔधजी की काव्यगत विशेषताओं पर संक्षेप में विचार प्रकट कीजिये ।

अथवा

प्रश्न ५—भाव पक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से हरिऔधजी के काव्य की आलोचना कीजिये ।

उत्तर—हरिऔधजी अपने युग की परिस्थितियों, मान्यताओं तथा आन्दोलनों से भलीभाँति परिचित थे इसीलिये वे अपने युग की हलचलों को अपनी कला द्वारा समय-समय पर व्यक्त करते रहते थे । कवि के चोखे चौपदे, चुभते चौपदे आदि कविता संग्रह पढ़ने से कोई भी व्यक्ति यह समझ सकता है कि कवि अपने युग की विषमताओं, त्रुटियों तथा दुर्बलताओं से भली भाँति परिचित हैं । उस समय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सुधारवाद की माग थी । आर्य समाज, ब्रह्म समाज आदि कई संस्थाएँ ऊँच-नीच, भेद-भाव, छुआछूत आदि की भावनाओं को दूर करके एकता, सेवा, मानवता, समानता, विश्व-बंधुत्व आदि का प्रचार कर रही थीं । युग के इन समस्त विचारों का प्रभाव कवि पर पूर्णतया दिखाई देता है । कवि द्वारा प्रणीत 'प्रिय-प्रवास' तथा 'वैदेही वनवास' में स्थान-स्थान पर इन विचारों की झांकी विद्यमान है । यहाँ हम भाव पक्ष और कला पक्ष की दृष्टि से हरिऔधजी के काव्य पर संक्षेप में विचार करेंगे ।

भाव पक्ष—रस की दृष्टि से हरिऔधजी प्रमुखतः शृङ्गार, वात्सल्य और करुण के कवि हैं । वैसे अन्य रस भी उनकी रचनाओं में प्राप्त होते हैं । उनके शृङ्गार वर्णन में वियोग-पक्ष की ही प्रधानता है । 'प्रिय-प्रवास' में राधा के विरह-वर्णन तथा यशोदा के वात्सल्य भाव के बड़े ही मार्मिक चित्र कवि ने प्रस्तुत किये हैं । कृष्ण के मथुरागमन की सूचना पाते ही प्रफुल्लित

वालिका (राधा) अनायास ही मलिन और खिन्न हो जाती है। उसके हृदय कसक, पीड़ा और वेदना घर कर लेती है जिससे उसका शरीर प्रति कांपता रहता है। उसे टिमटिमाते हुये तारे ठिठक कर गगन में पड़े हुये से ज पड़ते हैं। आधार में दुखाग्नि की ज्वालायें फूटती सी मालूम पड़ते हैं। ट हुये तारे किसी दिल जले के शरीर के पतन के रूप में दिखाई देते हैं। इ प्रकार राधा को सर्वत्र शोक, विषाद, भय छाये हुये प्रतीत होते हैं। उषा क लालिमा उसे किसी कामिनी के बहते हुये रुधिर के रूप में जान पड़ती है पक्षियों के कलरव में उसे व्याकुलता मालूम पड़ती है और दिशाओं में आग सी लगी हुई प्रतीत होती है—

> क्षितिज निकट कैसी लालिमा दीखती है।
> वह रुधिर रहा है कौन सी कामिनी का।
> विहग विकल हो हो बोलने क्यों लगे हैं।
> सखि! सकल दिशा में आग-सी क्यों लगी है॥

इसके बाद वह काल की क्रूरता को समझ लेती है और कहती है—

> अब नभ उगलेगा आग का एक गोला।
> सकल-ब्रज-धरा को फूँक देता जलाता॥

इस प्रकार विरह-व्यथिता राधा का कमल-मुख सूख जाता है, होंठ नीले पड़ जाते हैं और दोनों आँखें अश्रुपूरित हो जाती हैं। आगे वह पवन को अपनी दूती बना कर मथुरा में श्रीकृष्ण के पास अपना सन्देश लेकर भेजती है। वह उसे नाना प्रकार की युक्तियाँ बताकर अन्त में यह कहती है कि वह और कुछ न कर सके तो परम प्रिय श्रीकृष्ण के कमल-पग का स्पर्श मात्र हो कर आवे—

> पूरी होवें न यदि तुझसे अन्य बातें हमारी।
> तो तू मेरी विनय इतनी मानले औ चली जा।
> छूके प्यारे कमल-पग को प्यार के साथ आ जा।
> जी जाऊँगी हृदय-तल में मैं तुझी को लगा के॥

राधा के इस अन्तिम सन्देश में कितनी अधीरता, व्याकुलता और प्रेम-पिपासा भरी हुई है। इसी प्रकार यशोदा के वात्सल्य-भाव का भी बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन कवि ने किया है। प्रभात होते ही ब्रज-वल्लभ मथुरा चले जायेंगे। यही सोचकर माँ—

"निकट कोमल तल्प मुकुन्द के ।
कलपती जननी उपविष्ट थीं ।
अति असंयत अश्रुप्रवाह से ।
वदन-मण्डल प्लावित था हुआ ।

पुत्र की वियोग वेदना से तड़प-तड़प कर और कंस की नृशंसता का अनुमान करके वे करुण-क्रन्दन कर बैठती थीं, परन्तु कृष्ण जाग न उठें, इस भय से सिसकती तक भी न थीं। कभी मन नहीं मानता था तो वे—

पट हटा सुत के मुख-कंज की,
विकचता जब थीं अवलोकती ।
विवश सी तब थीं फिर देखतीं,
सरलता, मृदुता, सुकुमारता ॥

कवि ने यहाँ मातृ-हृदय की वियोगजनित विह्वलता का कितना मनोवैज्ञानिक सुन्दर विश्लेषण किया है। आगे वह कुल देवी-देवताओं तथा जगदम्बा से व्रज-वल्लभ की कुशलता की याचना करती हैं। यशोदा की उस विनय में वात्सल्य-भाव का गम्भीर और मार्मिक चित्रण हुआ है। कृष्ण के प्रयाण करने पर वे उनके लौटने की आशा में अनेकों मेवे आदि को सुन्दर पात्रों में सजाकर रखतीं थीं। कृष्ण को मथुरा छोड़ नन्द को अकेले ही आता देखकर यशोदा विक्षिप्त और उद्भ्रांत हुई सी दौड़ी आईं और आते ही—

'आते ही वे निपतित हुईं बेलि उन्मूलिता सी।'

फिर चेतना आने पर वह करुण-क्रन्दन करने लगीं—

प्रिय पति ! वह मेरा प्राण-प्यारा कहाँ है ?
दुःख-जलनिधि डूबी का सहारा कहाँ है ?

इस प्रकार वत्सलता का उदधि उमड़ पड़ता है और यशोदा की हृदय-वेदना की सीमा असीम हो जाती है। अन्त में राधा के वियोग-शृंगार और यशोदा के वात्सल्य-भाव की परिणति करुण रस में ही हो जाती है। करुण-रस का स्थायी भाव शोक है। शोक से संपूर्ण 'प्रियप्रवास' भरा हुआ है। हरिऔधजी का दूसरा महाकाव्य 'वैदेही-वनवास' है। यह भी करुण-रस से ओत-प्रोत है। कवि ने इन

दोनों ही महाकाव्यों में इतनी वेदना, इतनी टीस और इतनी छटपटाहट भर है कि उन्हें पढ़ते-पढ़ते आँखों में आँसू छलछला आते हैं। 'वैदेही-वनवास' एक करुण चित्र देखिये। लोकाराधक राम सीता को लोकापवाद की सारी बता कर जब उन्हें स्थानान्तरित करने की इच्छा प्रकट करते हैं उस समय मा सीता की जो दशा हुई वह निम्न छन्दों में व्यक्त है—

> जनक-नन्दिनी ने दृग में आते आँसू को रोक कहा।
> प्राणनाथ सब तो सह लूँगी क्यों जायेगा विरह सहा॥
> सदा आपका चन्द्रानन अवलोके ही मैं जीती हूँ।
> रूप-माधुरी-सुधा तृषित बन चकोरिका सम पीती हूँ॥
> वदन विलोके बिना बावले युगल-नयन बन जायेंगे।
> तार बाँध बहते आँसू का बार-बार घबरायेंगे॥
> मुँह जोहते बीतते बासर रातें सेवा में कटतीं।
> हित-वृत्तियाँ सजग रह पल-पल कभी न थी पीछे हटतीं॥

सीताजी के उक्त कथन में कितनी वेदना भरी हुई है। उनके वियोग के चित्रों में मानव-हृदय का इतना हाहाकार और इतनी करुणा भरी हुई है कि उससे पत्थर भी पिघल जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने शृङ्गार, वात्सल्य और करुण के बड़े ही सुन्दर, मार्मिक और आकर्षक चित्र प्रस्तुत किये हैं। पर इन सब रसों का अवसान शान्त रस में हुआ है। इन रसों के अतिरिक्त भयानक, वीर, रौद्र और अद्भुत रसों के उदाहरण भी कवि की रचनाओं में यत्र-तत्र मिलते हैं।

प्रकृति-चित्रण—हरिऔधजी ने जिन प्राकृतिक दृश्यों को लिया है उनका सफलतापूर्वक वर्णन किया है। किन्तु कहीं-कहीं वस्तु-परिगणन शैली के अनुसार पेड़ों के नाम गिनाने की धुन में देश और काल की चिन्ता नहीं की है। प्रकृति के साधारण चित्रों के साथ-साथ वर्षा आदि ऋतुओं का भी वर्णन बड़े अनूठे ढंग से किया है। बिजली के चमकने और मेघों की गड़गड़ाहट आदि के द्वारा चित्रित करने में जो शब्दावली प्रयुक्त की है वह शब्द-चित्र प्रस्तुत करने में बड़ी सफल हुई है। देखिये—

दिवस एक प्रभंजन का हुआ।
अति-प्रकोप, घटा नभ में घिरी।
बहु-भयावह - गाढ़ - मसी - समा।
सकल-लोक प्रकम्पित - कारिणी॥
अशनि - पात - समान दिगन्त में।
तब महा-रव था बहु-व्यापता।
कर विदारण-वायु प्रवाह का।
दमकती नभ में जब दामिनी॥

'प्रियप्रवास' का तो आरम्भ ही कवि ने प्रकृति-चित्रण द्वारा किया है—

दिवस का अवसान समीप था,
गगन था कुछ लोहित हो चला,
शिखा पर थी अब राजती,
कमलिनी कुल-वल्लभ की प्रभा।

प्रकृति के ऐसे सरल और साधारण चित्रों के अतिरिक्त कवि ने ऐसे भी त्र उपस्थित किये हैं जिन पर मनोविकारों का आरोप किया गया है। कृष्ण मधुपुर-गमन का समाचार सुनकर राधा कहती हैं—

यह सकल दिशायें आज रो सी रही हैं,
यह सदन हमारा है हमें काट खाता।

कवि ने 'वैदेही-वनवास' में भी प्रकृति के काव्यमय और संश्लिष्ट चित्र कित किये हैं—

प्रकृति सुन्दरी विहँस रही थी, चन्द्रानन था दमक रहा।
परम दिव्य बन कांत-अंग में, तारक-चय था चमक रहा।
पहन श्वेत-साटिका सिता की, वह लसिता दिखलाती थी।
ले ले सुधा सुधाकर-करसे, वसुधा पर बरसाती थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति प्रेमी कवि हरिऔधजी ने प्रकृति के बड़े कलापूर्ण तथा भावात्मक चित्र अंकित किये हैं।

कलापक्ष—भाव पक्ष की भाँति ही हरिऔधजी का कलापक्ष भी समुन्नत पूर्ण है। हम यहाँ उनके कलापक्ष के विभिन्न उपकरणों पर संक्षेप में

भाषा शैली—हरिऔधजी का अपनी भाषा पर पूरा अधिकार है। अपनी शैली के वह स्वयं निर्माता हैं। प्रियप्रवास, वैदेही-वनवास, रसकलस, बोलचाल तथा चोखे चौपदे आदि ग्रन्थों में उनकी शैली के विविध रूप दिखाई देते हैं। काव्य क्षेत्र में उनकी शैली हमें चार रूपों में प्राप्त होती है:—

१. उर्दू की मुहावरेदार शैली, २. हिन्दी की रीतिकालीन शैली, ३. संस्कृत-काव्य की शैली और ४. उत्तम हिन्दी की शैली।

अपनी प्रखर प्रतिभा और पांडित्य से इन शैलियों को हरिऔधजी ने चमका दिया है। उनकी शैली में कृत्रिमता कहीं नहीं दिखाई देती उसमें सर्वत्र स्वाभाविकता, सरलता और आकर्षण है। छन्दों और विषयों के अनुकूल भाव के प्रयोग से उनकी शैली में गति एवं प्रवाह है। शैली को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के लिये उन्होंने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, भ्रम, संदेह, श्लेष, यमक आदि अलंकारों से सहायता ली है किन्तु उनके ऐसा करने से भाषा की स्वाभाविकता और उसके प्रवाह को धक्का नहीं पहुँचा है। इसलिये उसकी रचनाओं में रस परिपाक अत्यन्त सफलता से हुआ है। वे शृंगार, करुण, और शान्त आदि रसों के परिपाक में हिन्दी कवियों में अपना श्रेष्ठ स्थान रखते हैं।

भाषा के तो हरिऔधजी धनी हैं। ब्रजभाषा और खड़ी बोली पर उनका समान अधिकार है। वह सरल से सरल और कठिन से कठिन भाषा लिखने में सिद्धहस्त हैं। भाषा उनके भावों का पूर्णरूप से अनुगमन करने वाली है। शब्दों की तोड़ मरोड़ या भर्ती के शब्दों की भरमार इनकी भाषा में नहीं है। उनकी भाषा के मुख्यतः चार रूप हमें मिलते हैं—१. उर्दू से प्रभावित हिन्दी, २. ब्रजभाषा, ३. सरल साहित्यिक हिन्दी, और ४. तत्सम शब्द प्रधान हिन्दी। चुभते चौपदे, चोखे चौपदे, बोलचाल आदि काव्यों में उनकी भाषा उर्दू से प्रभावित है। वह सरल सुबोध और मुहावरेदार है। रसकलस में उनकी भाषा ब्रजभाषा है जो खड़ी बोली से प्रभावित है। वैदेही वनवास में हमें सरल साहित्यिक हिन्दी के दर्शन होते हैं। और प्रियप्रवास में तत्सम शब्द प्रधान हिन्दी का प्रयोग हुआ है। प्रियप्रवास की भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों से कहीं-कहीं इतनी बोझिल हो गई है कि उसमें हिन्दी खो-सी गई जान पड़ती है। यथाः—

स्वर्णोद्यान प्रफुल्ल प्रायः कलिका राकेन्दु बिम्बानना।
तन्वंगी कल हासिनी, सुरसिका क्रीड़ा-कला पुत्तली॥

इस प्रकार की भाषा के प्रयोग से कवि ने अपने भाषा-पाण्डित्य का परिचय तो अवश्य दिया है पर अपने पाठकों का ध्यान नहीं रखा है। साथ ही इस प्रकार की भाषा से काव्य की रोचकता भी नष्ट हुई है और रस परिपाक में बाधा पड़ी है। इन दोनों के होते हुए भी हरिऔधजी के भाषा-पाण्डित्य पर किसी को भी सन्देह नहीं हो सकता। भाषा के क्षेत्र में उनका प्रयास नवीन और सर्वथा मौलिक है। उनकी भाषा में स्वाभाविक प्रवाह, संगीत और लालित्य है। भावों को वहन करने में उनकी भाषा पूर्णतः समर्थ है।

प्रश्न ६—'यशोदा के चरित्र चित्रण द्वारा 'हरिऔध' जी मातृहृदय की ममता, करुणा, वत्सलता तथा उदार मनोवृत्ति का परिचय देने में पूर्ण सफल हुये हैं।' इस कथन की सार्थकता प्रमाणित कीजिये।

अथवा

प्रश्न ७—'यशोदा विरह में कवि ने मातृहृदय का वह करुण एवं हृदय-द्रावक रूप प्रस्तुत किया है जो पाठकों को बरबस ही अपनी ओर आकृष्ट कर उन्हें शोक-सागर में निमग्न कर देता है।' इस कथन की युक्ति-युक्त विवेचना कीजिये।

उत्तर—'प्रियप्रवास' की रचना होने के पूर्व यद्यपि यशोदा के अनुपम त्याग एवं अलौकिक वात्सल्य से अनेक कृष्ण-भक्त कवि प्रभावित हुए हैं तथापि उनमें से किसी ने भी उनके मंगलमय मातृरूप की गौरव पूर्ण झाँकी स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत नहीं की। 'हरिऔध' जी ने 'प्रियप्रवास' महाकाव्य का प्रणयन करके कृष्ण-भक्त कवियों के इस अभाव को पूरा किया है। उपाध्यायजी ने अपने ग्रंथ में यशोदा के वात्सल्य, ममता तथा उदार मनोवृत्ति की चर्चा विस्तार से की है।

सबसे पहले हमें यशोदा के दर्शन 'प्रियप्रवास' के तृतीयसर्ग में होते हैं। जहाँ वह एक वात्सल्य पूर्ण एवं अधीर जननी के रूप में चित्रित की गई हैं।

उनके प्राणप्रिय-पुत्र श्रीकृष्ण प्रभात होते ही अत्याचारी तथा नृशंस शासक कंस के निमंत्रण पर मथुरा चले जायँगे वह नृपाधम न जाने कौनसे कौशल-जाल में उन्हें फँसाने का प्रयत्न कर रहा है। इस प्रकार की अनेक भय-भरी कुत्सित भावनायें उनके हृदय में उठ रही थीं। कंस की भयंकर नीति एवं कुटिलता के कारण वह अत्यन्त व्याकुल और चिन्तित होकर श्रीकृष्ण की शैया के समीप बैठी हुई आँसू बहा रही थीं—

'निकट कोमल तल्प मुकुन्द के।
कलपती जननी उप विष्ट थी।
अति - असंयत अश्रु - प्रवाह से।
वदन-मण्डल प्लावित था हुआ।'

श्रीकृष्ण के जन्म से ही नराधम कंस ने अनेक विघ्न बाधायें एवं आपत्तियाँ उपस्थित कर जननी यशोदा के हृदय को हिला दिया था। आज उसी ने उनके प्रियपुत्र को अपने घर बुलाया है यह सोचकर वह सशंकित हो करुण-क्रन्दन करने लगती थी किन्तु 'हरि न जाग उठें' इस सोच से वह सिसकती तक भी न थीं। कभी वह अधीर होकर श्रीकृष्ण के मुख पर पड़े हुये वस्त्र को हटा उनके मुख-कंज की विकचता देखने लगती थीं। कवि ने निम्न पंक्तियों में मातृहृदय की वियोग जन्य इस विह्वलता का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है—

"पट हटा कर सुत के मुख कंज की,
विकचता जब थीं अवलोकती।
विवश सी जब थीं फिर देखतीं।
सरलता, मृदुता, सुकुमारता ॥"

वास्तव में माता का हृदय बड़ा ही शंकालु होता है। पुत्र की कल्याण कामना करती हुई माता यशोदा यदि विलम्बित हो हाथ जोड़ कर कुल देवी एवं कुल-देवताओं को मनाने लग जाती थीं और उनसे याचना करती थीं कि मेरे दोनों पुत्र सम्पूर्ण विघ्न-बाधाओं से बचकर अपने पिता के साथ मथुरा से सकुशल घर लौट आवें। मातृहृदय की वेदना का आभास माता को ही हो सकता है इसी विचार से उन्होंने जगदम्बा से प्रार्थना की—

कलुष - नाशिनिदुष्ट - निकंदिनी ।
जगत की जननी भव-वल्लभे ।
जननि के जिय की सकला व्यथा ।
जननि ही जिय है कुछ जानता ॥

यशोदा की यह अधीरता, कातरता एवं व्याकुलता निश्चित ही जननी के विमल ऐश्वर्य की द्योतक है।

यशोदा वात्सल्य की साकार मूर्ति है। श्रीकृष्ण द्वारा मथुरा-गमन हेतु विदा मांगते ही जननी के दृगों से अश्रुधार प्रवाहित होने लगी और वह धीरे से बोलीं—

'धीरे बोलीं परम दुख से जीवनाधार जाओ।
दोनों भैया विधुमुख हमें लौट आके दिखाओ ॥'

कितनी विवशता भरी हुई है जननी के इन शब्दों में। माता की चाहे उसका पुत्र कितना भी सामर्थ्यवान एवं शक्तिशाली हो फिर भी उसकी चिन्ता सदैव बनी ही रहती है। यशोदा भी ऐसी ही जननी है। अपने दोनों पुत्रों को रथ पर बैठा हुआ देख बड़ी दीनता और दुख पूर्ण शब्दों में उन्होंने अपने पति से कहा—

"अहह दिवस ऐसा हाय ! क्यों आज आया।
निज प्रियसुत से जो मैं जुदा हो रही हूँ।
अगणित गुण वाली प्राण से नाथ प्यारी।
यह अनुपम थाती मैं तुम्हें सौंपती हूँ ॥"

फिर स्पष्ट रूप से नन्दजी से कहा—"हे प्रियतम मेरे पुत्रों को मार्ग में कुछ कष्ट न हो। यदि भूख लगे तो इन्हें मधुर फल या नाना प्रकार के व्यंजनों को खिलाना, प्यास लगे तो विमल जल पिलाना। देखना प्रखर पवन मेरे लाडिलों को न सता पावे और सूर्य की संतप्त किरणों से भी इन्हें बचाना। उचित हो तो उन्हें शीतल छाया में भी बिठाना। कहीं पुत्रों का सरोज बदन कुम्हला न जाय। मथुरा नगरी में कोई कुटिल स्त्री अपनी विषैली छाया मेरे

पुत्रों पर न डाल पावे। ऐसी डाकिनों से सावधान रहना। नगर दिखाने जब भी उन्हें अपने साथ ही रखना, एक क्षण भी आँखों से दूर न करना। यदि कहीं पथ की भृकुटि तनिक भी टेढ़ी देखो तो अवसरानुकूल कोई ऐसा कल सोच लेना जिससे वह भी दुखित न हो और मेरे लाल भी सुरक्षित रहें।"

माता यशोदा के इन हृदयोद्‌गारों में कितना वात्सल्य एवं स्नेह भरा हु है। कृष्ण के चले जाने पर वह उनके लौटने की आशा लगाये अनेकों रसीले फल और मधुर मिठाइयों को प्रति दिन भाजनों में सजा कर रखती थ उनके नेत्र प्रत्येक पल श्याम की मनोहारी मूर्ति देखना चाहते थे। प्रत्येक व वह यही चाहती थी कि मेघ-सी कान्ति वाला उनका प्रिय सुअन शीघ्र ही आ मुख दिखावे। इसके अतिरिक्त वह—

"प्रति दिन कितने ही देवता थी मनाती।
बहु यजन कराती विप्र के वृन्द से थी।
नित घर पर कोई ज्योतिषी थी बुलाती।
निज प्रिय सुत आना पूछने को यशोदा।"

मातृ हृदय की उत्सुकता, उत्कण्ठा और आशा का कितना मनोवैज्ञानि चित्रण किया है कवि ने। पुत्रों को मथुरा में छोड़कर जब नन्दजी अकेले गोकुल लौटे तो अपने पुत्रों को उनके साथ न देखकर यशोदा 'छिन्नमूला लता के समान भूमि पर गिर पड़ीं फिर अनेक यत्नों द्वारा जब उन्हें चेतना आई व्याकुलता के साथ करुण-क्रन्दन करती हुई वह बोलीं—

"प्रिय-पति वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है।
दुख-जलधि निमग्ना का सहारा कहाँ है।"

× × ×

सहकर कितने ही कष्ट औ संकटों को।
बहु यजन कराके पूज के निर्जरों को।
यक सुअन मिला है जो मुझे यत्न द्वारा।
प्रियतम! वह मेरा कृष्ण प्यारा कहाँ है॥

प्रियतम ! अब मेरा कंठ में प्राण आया
सच सच बतला दो प्राण प्यारा कहाँ है ?
यदि मिल न सकेगा जीवनाधार मेरा ।
तब फिर निज पापी प्राण मैं क्यों रखूँगी ॥"

फिर वह अपने प्राणों को ही पातकी और निर्मम बताने लगती है जो प्रिय सुत के वियोग में भी उनके दुःखमय शरीर में रुके हुए हैं । अन्त में वह विलाप करती हुई कहती है—

"हा ! वृद्धा के अतुल धन हा ! वृद्धता के सहारे ।
हा ! प्राणों के परम-प्रिय हा ! एक मेरे दुलारे ।
हा ! शोभा के सदन सम हा ! रूप लावण्य वाले ।
हा ! बेटा हा ! हृदय-धन हा ! नेत्र-तारे हमारे ॥
कैसे होके अलग तुझ से आज भी मैं बची हूँ ।
जो मैं ही हूँ समझ न सकी तो तुझे क्या बताऊँ ।
हाँ जीऊँगी न अब, पर है वेदना एक होती !
तेरा प्यारा वदन मरती बार मैंने न देखा ॥"

इस प्रकार करुण-क्रन्दन करते हुए यशोदा पुनः चेतना शून्य हो गईं । यशोदा का यह विलाप-कलाप मातृहृदय का कितना भव्य और सच्चा स्वरूप प्रस्तुत करता है । ऐसा कौन पाषाण-हृदय होगा जो ममतामयी माता की करुण वेदना से द्रवीभूत होकर उसके प्रति सहानुभूति प्रकट न करे ।

ममता और करुणा की साकार प्रतिमा यशोदा को नंदजी ने समझाया कि "धैर्य रखो, प्रियपुत्र दो ही दिनों में मथुरा से लौट आवेगा" पति के मुख से पुत्र के आगमन की बात सुनकर यशोदा ने अपनी आँखें खोलीं और "क्या आवेगा कुँवर ब्रज में नाथ दो ही दिनों में" कहकर अपनी बात की पुष्टि चाही । नन्दजी ने उन्हें यह कहकर 'हाँ आवेगा प्रिय-सुत प्रिये गेह दो ही दिनों में" आश्वासित किया । किन्तु आशामयी उस माता की आशा-रज्जु

उस समय टूट गई जब उद्धव कृष्ण का संदेश लेकर गोकुल में आये। यशोदा ने उद्धव से पूछा—"मेरे प्यारे पुत्र सकुशल, सुखी और सानन्द तो हैं! उन्हें कोई चिन्ता मलिन तो नहीं बनाती! मेरे लाल को मीठे-मेवे, मधुर मक्खन और नाना पकवान उत्कण्ठा और प्यार से कौन खिलाती होगी! मेरा लाल बड़ा संकोची और सरल है। उसे माँगने में सदा लज्जा होती थी। मैं तो सदा-दिन उसका मुख देखकर ही खिला देती थी। उसे किंचित म्लान देखकर मैं अधीर हो जाती थी। हे उद्धव! अब इस प्रकार उसके मुख को कौन देखती होगी। क्योंकि माता के समान ममता अन्य को नहीं होती।" इसी भाँति [illegible] में यशोदा अपनी व्यथा-कथा कहती हुई अधीर हो गई और अपनी लम्बी राम-कहानी उद्धव को सुनाने लगी कि कैसे-कैसे कष्ट उठाकर मैंने कृष्ण का लालन-पालन किया, अनेक विघ्नों का सामना करके उसे इतना बड़ा किया और आज उसके बिना किस तरह सारा ब्रज बेचैन हुआ है। यह मानती हूँ कि मैंने भूल से बहुत सी बुरी बातें की हैं। प्यारे पुत्र को मैंने बाँधा, आँख भी दिखाई और मारा भी है किन्तु फिर भी मैं सर्वथा क्षमायोग्य हूँ। अब तुम उससे मेरी ओर से निवेदन करना कि—

"जो चूकें हैं विविध मुझसे हो चुकी वे क्षमा हों।
[illegible] देती सतत चित को जो [illegible] बड़ा है।
प्यारे मेरे विनय करना वे उन्हें भूल जावें।
मेरे जी को व्यथित न करें क्षेम आके सिधारें॥
मेरे आगे [illegible] सुमन के सामने मंजु देखें।
प्यारे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
मेरे जी में अब यह बड़ी एक ही कामना है।
आके प्यारे कुँवर उसका [illegible] मेरा [illegible]।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि [illegible] माता के जीवन की [illegible] एवं मार्मिक झाँकी कवि ने यहाँ प्रस्तुत की है।

[illegible] के [illegible] एवं [illegible] के [illegible] की

हमें 'प्रियप्रवास' में होते हैं। अपनी करुण-गाथा को यशोदा उद्धव को सुनाती हुई कहती है—

"मारा मल्लों सहित गज को कंस से पातकी को।
मेटी सारी नगर, घर की दानवी-आपदायें।
छाया सच्चा-सुयश जग में पुण्य की बेलि बोई।
जो प्यारे ने स-पति दुखिया-देवकी को छुड़ाया॥
जो होती है सुरत उनके कम्प-कारी दुखों की।
तो आँखें हैं विपुल बहता आज भी लोचनों से।
ऐसी दग्धा परम-दुखिता जो हुई मोदिता है।
ऊधो तो हूँ परम सुखिता हर्षिता आज मैं भी॥
मैं रोती हूँ हृदय अपना कूटती हूँ सदा ही।
हा! ऐसी ही व्यथित अब क्यों देवकी को करूँगी॥

यशोदा को यद्यपि यह जानकर पीड़ा होती है कि 'होता मम तनय भी अन्य का लालिता है' फिर भी वह यह नहीं चाहतो कि देवकी के प्यारे पुत्र को वह अपने पास बुलाकर गोकुल में रखले। अब तो उसकी एक मात्र यही कामना है कि—

"प्यारे जीवें पुलकित रहें औ बनें भी उन्हीं के।
धाई नाते वदन दिखला एकदा और देवें॥

उदार हृदया यशोदा के इन शब्दों में कितनी महानता, अन्तःकरण की कितनी विशालता एवं त्याग भरा हुआ है। जिस पुत्र को उन्होंने अनेक कष्टों के साथ पाल-पोष कर बड़ा किया, जो उनकी वृद्धावस्था का एक मात्र सहारा है उसे वह दूसरों को सौंपती हुई किंचित मात्र भी नहीं झिझकतीं और केवल यही कामना करती है कि भले ही उनका पुत्र दूसरों का बन जाय, परन्तु धाई के नाते से ही एक बार तो अपना मुख दिखा जाय।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि 'हरिऔधजी' ने यशोदा का चरित्र अंकित कर भारत की उस आदर्श माँ की झाँकी प्रस्तुत की है जिसके

श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

जीवन-परिचय—वैश्य कुलभूषण कविवर जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का जन्म विक्रमी सं० १९२३ (सन् १८६६) भाद्र पद शुक्ला पंचमी को काशी में हुआ। इनके पूर्वज मुगलकाल में सफीदों (पानीपत) जिला करनाल के रहने वाले थे और मुगल शासन के उत्तरकाल में प्रतिष्ठित पदों पर काम करते थे। मुगल शासन के ह्रास काल में वे दिल्ली से लखनऊ चले आये थे। लखनऊ में भी इनका सम्बन्ध नवाबों से बना रहा। 'रत्नाकर' के प्रपितामह सेठ तुलाराम लखनऊ के बड़े रईसों में से थे और नवाबों के दरबार में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। एक बार लखनऊ के किसी नवाब द्वारा ६ लाख रुपया उधार माँगने पर उन्हें अपनी सम्पत्ति का बहुत बड़ा अंश देना पड़ा। किन्तु इससे उनके अमीरी ठाट बाट में कोई विशेष अन्तर नहीं आया। एक बार तुलारामजी शाहजादा के साथ काशी आये। काशी उन्हें पसन्द आ गयी। अतः शिवाला घाट पर मकान खरीद कर वे वहीं रहने लगे।

'रत्नाकर' जी के पिता बाबू पुरुषोत्तमदास फारसी के उद्भट विद्वान और हिन्दी-साहित्य के बड़े प्रेमी थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उनके अभिन्न मित्र थे और उनके यहाँ प्रायः आया करते थे। पुरुषोत्तमदासजी के यहाँ फारसी और हिन्दी के कवियों का समाज जुटा रहता था। कवि-गोष्ठियाँ हुआ करती थीं। जगन्नाथदासजी को बाल्यावस्था से ही विद्वत् समाज में बैठने का सौभाग्य प्राप्त होने लगा जिससे उनकी प्रतिभा के विकास के लिये अनुकूल अवसर मिला। इन्हीं दिनों उन्होंने दो-एक कवित्त बनाये जिन्हें सुनकर भारतेन्दुजी ने कहा था कि "यह लड़का कभी अच्छा कवि होगा।" भारतेन्दुजी की यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई।

'रत्नाकर' जी की सम्पूर्ण शिक्षा काशी में ही हुई। यहाँ के क्वीन्स कालेज से उन्होंने सन् १८९१ में अंग्रेजी, फिलासफी तथा फारसी लेकर बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् एल० एल० बी० और फारसी में एम० ए० के लिये अध्ययन आरम्भ किया किन्तु कुछ पारिवारिक अड़चनों के कारण वे

परीक्षा न दे सके। विद्यार्थी जीवन समाप्त करने के पश्चात् सं० १९५२ आपश्चात् इन्होंने अवागढ़ रियासत में नौकरी कर ली किन्तु जलवायु स्वास्थ्य अनुकूल न होने के कारण उन्होंने दो वर्ष बाद अपने कोषाध्यक्ष पद से त्याग पत्र दे दिया और वहाँ से काशी आ गये। कुछ दिन घर रहने के बाद सन् १९० में अयोध्या नरेश महाराजा सर प्रताप नारायणसिंह बहादुर के०सी०आई०ई० ने आपको प्राइवेट सेक्रेटरी के पद पर नियुक्त किया और आपकी कार्य कुशलता से प्रसन्न होकर महाराज ने कुछ ही दिनों में आपको चीफ सेक्रेटरी बना दिया। सन् १९०६ में अयोध्या नरेश का देहावसान हो जाने पर अयोध्या की महारानी श्री मती जगदम्बा देवी ने अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बना लिया। सन् १९२८ तक आप इसी पद पर रहे।

'रत्नाकर' जी आरम्भ में फारसी में कविता करते थे। इनका उपनाम 'जकी' था। किन्तु बाद में ब्रजभाषा के कवियों के सम्पर्क में आने से ये फारसी को छोड़कर ब्रजभाषा में काव्य-रचना करने लगे। उनके मित्रों में सबसे प्रिय और अभिन्न मित्र बाबू श्यामसुन्दरदास थे। श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, श्री दुलारेलाल भार्गव, पं० पद्मसिंह शर्मा, पं० नाथूराम शर्मा 'शंकर', पं० बदरी नाथ भट्ट आदि से भी आपका घनिष्ठ सम्बन्ध था। इनके अतिरिक्त बा० देवकी नन्दन खत्री, पं० अम्बिकादत्त व्यास, रायदेवीप्रसाद शर्मा, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, पं० श्रीधर पाठक, सत्यनारायण कविरत्न, वियोगीहरि, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पं० मदनमोहन मालवीय तथा डा० सर जार्ज ग्रियर्सन से भी आपकी मित्रता थी। तात्पर्य यह कि तत्कालीन कोई भी सुविख्यात लेखक या हिन्दी कवि ऐसा नहीं था जिससे वे परिचित न हों। साहित्य-जगत में उनका लोहा प्रायः सभी कवि और लेखक मानते थे। ये कवि ही नहीं अपितु एक अच्छे पत्रकार और सफल संपादक भी थे। उन्होंने सन् १८९३ ई० में 'साहित्य सुधानिधि' नामक मासिक पत्र निकाला और कई पुस्तकों और ग्रंथों जैसे 'सुधासागर', 'नख शिख', 'सुजान सागर' चन्द्रशेखर वाजपेयी कृत 'हम्मीर हठ' तथा 'सूरसागर' आदि का बड़ी सफलता से सम्पादन किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'बिहारी सतसई' पर 'बिहारी रत्नाकर' नाम की टीका की। 'बिहारी सतसई' पर अब तक हुई ४० से अधिक टीकाओं में रत्नाकरजी की टीका सर्वश्रेष्ठ है।

(२) काव्य संग्रह—शृंगार लहरी, प्रकीर्ण पद्यावली, गंगा-विष्णु ल
रत्नाष्टक और वीराष्टक।

(३) अनूदित ग्रन्थ—समालोचनादर्श। यह अंगरेज़ी कवि पोप की प्र
रचना 'Essay on Criticism' का रोला छन्दों में अनुवाद है।

इनके अतिरिक्त उन्होंने बिहारी सतसई पर बिहारी रत्नाकर टीका लि
तथा कई ग्रंथों का सम्पादन भी किया जिनका उल्लेख पूर्व में ही हो चुका है

हिंडोला रत्नाकर जी की प्रथम काव्य रचना है जो सन् १८९४ में प्रका
हुई। हिंडोला आदि में एक कवित्त तथा अन्त में एक दोहा है। शेष सं
काव्य की रचना १०० रोलाओं में हुई। इस काव्य में वर्षा ऋतु में राधा
के झूला झूलने का बड़ा ही मोहक वर्णन है। वर्षा ऋतु की प्राकृतिक छ
वर्णन में रत्नाकर जी को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। कहीं-कहीं अने
उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ देखने ही बनती हैं। इस काव्य में आदि से अन्त त
संयोग शृंगार की प्रधानता है।

'हरिश्चन्द्र' काव्य में करुण, भयानक, बीभत्स, रौद्र, वीर आदि रसों
अच्छा परिपाक हुआ है। इस काव्य की कथा बहुत कुछ भारतेन्दु जी के 'स
'हरिश्चन्द्र नाटक' से मिलती है।

'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में ४ अंक हैं वैसे ही 'हरिश्चन्द्र काव्य' भी ४ स
में पूरा हुआ है। सम्पूर्ण काव्य में दो सौ छत्तीस रोला छन्द हैं। इसमें ऐ
अनेक स्थल हैं जिन्हें पढ़ते-पढ़ते आँखें अश्रुपूरित हो जाती हैं।

'कलकाशी' रत्नाकर जी का वर्णन प्रधान प्रबन्ध-काव्य है। इसमें ए
छप्पय और १४२ रोला छन्द हैं। कवि ने इसमें काशी के बाजारों, अट्टालि
घाटों, मठों, साधु-संतों, देवस्थानों, विद्यार्थियों एवं विभिन्न विषयों के विद्वानों क
मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। रत्नाकर जी की यह रचना अपूर्ण ही रह गई है।
'शृंगार लहरी' तथा 'प्रकीर्ण पद्यावली' में समय-समय पर रची हुई उनकी फुटकर
कविताएँ संग्रहीत हैं।

'गंगा विष्णु-लहरी' की रचना कवि ने १०४ कवित्तों में की है। इसमें
गंगा की मोक्षदायिनी शक्ति का निरूपण किया गया है जो कवि की भक्ति-
भावना का द्योतक है। इसके अतिरिक्त रत्नाकर जी ने 'रत्नाष्टक' और

'वीराष्टक' भी लिखे जिनमें कुल ३० श्रष्टक संग्रहीत हैं। ये अष्टक भक्ति-भावना, देश-भक्ति और राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत हैं। इनमें रौद्र, वीर तथा शान्त रसों का पूर्ण परिपाक हुआ है।

'गंगावतरण' रत्नाकर जी का महत्वपूर्ण प्रबन्ध काव्य है। इसकी रचना सन् १६२१ ई० में प्रारम्भ हुई। इस काव्य की कथा-वस्तु स्थूल रूप से 'वाल्मीकि रामायण' से ग्रहण की गई है। किन्तु कथा कहने का ढंग कवि का अपना ही है। इस ग्रन्थ की रचना 'रोला' छन्द में हुई है। सम्पूर्ण काव्य तीन छप्पय, एक दोहा, तेरह उल्लाला और पाँच सौ छप्पन रोला छन्दों में समाप्त हुआ है। 'गंगावतरण' की कथा १३ सर्गों में विभाजित है। स्वर्ग से गंगा जी के पृथ्वी पर अवतरण होने के सम्बन्ध में हिन्दी-साहित्य में अभी तक किसी प्रबन्ध काव्य की रचना नहीं हुई थी, गंगावतरण की रचना करके रत्नाकर जी ने हिन्दी-साहित्य की इस कमी को पूरा किया है।

'उद्धवशतक' की रचना घनाक्षरी छन्दों में हुई है। सम्पूर्ण प्रबन्ध-काव्य में ११८ छन्द हैं। भ्रमर-गीत परम्परा में रत्नाकर जी का उद्धवशतक अपना विशिष्ट स्थान रखता है। रत्नाकर जी की यह कृति अत्यन्त ही सरस और कलात्मक है। कवि ने भक्तिकालीन कवियों की भावुकता तथा रीतिकालीन कवियों की शृंगारिकता का इस काव्य में पटुता के साथ समन्वय कर अपना अलौकिक काव्य-प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है। उद्धवशतक में कवि ने गोपी-उद्धव संवाद जैसे प्राचीन विषय को लेकर अपनी अनूठी सूक्तियों से उसमें नवीनता भर दी है।

काव्य-साधना—काव्य मे प्रायः दो पक्ष होते हैं—(१) भाव-पक्ष अथवा अनुभूति पक्ष, (२) कला-पक्ष अथवा अभिव्यक्ति पक्ष। ये दोनों पक्ष एक दूसरे के सहायक और पूरक हैं। भाव काव्य का प्राण है और कला उसका शरीर है। भाव-पक्ष के बिना काव्य का कोई मूल्य नहीं होता एवं कला-पक्ष के अभाव में उसे सुन्दर नहीं कहा जा सकता। अतः काव्य के सौन्दर्य के लिये दोनों ही पक्ष अभिप्रेत हैं।

भाव-पक्ष का सबसे मुख्य अंग रस है। रस तथा भाव का घनिष्ठ सम्बन्ध है। रस के अभाव में भाव-पक्ष में प्रेषणीयता एवं प्रभविष्णुता नहीं रहती

जिससे काव्य नीरस, शुष्क एवं भावहीन हो जाता है। हमारे यहाँ स्थायी भी माने गये हैं जिन्हें साहित्य में नव-रस के नाम से अभिहित किया जाता वे ये हैं :—

शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त

भाव-पक्ष की भाँति काव्य में कला-पक्ष का भी बड़ा महत्व है, किन्तु उसका पोषण नहीं है। कला-पक्ष काव्य के लिये वहीं तक अभिप्रेत है जहाँ कि वह उसके सौन्दर्य का उत्कर्ष करने में सहायक हो। इसके विपरीत भावात्मक अंग की उपेक्षा कर काव्य में कला-पक्ष को प्रधानता दी जाती है काव्य की आत्मा उसके भार से दब जाती है। उसमें फिर पाठक को रस-नि करने की शक्ति नहीं रहती। यह सब होते हुये भी विचारों और भावों सुसम्बद्ध, सुन्दर एवं चमत्कारपूर्ण बनाने के लिये कला-पक्ष भी काव्य परमावश्यक अंग है। कला-पक्ष में चार तत्व होते हैं :—

(१) भाषा, (२) छन्द, (३) अलंकार और (४) वर्णन शैली।

कला-पक्ष को रमणीय और साहित्यिक बनाने के लिये भाषा का सर्व एवं साहित्यिक होना परम वाञ्छनीय है। छन्द भाषा को भावानुकूल बना पाठक में एक विशेष ग्राहकता उत्पन्न कर देते हैं और अलंकार भाषा के सौन्द की वृद्धि करते हैं। इन तत्वों के अतिरिक्त वर्णन शैली भी एक आवश्यक तत् है जिसका वर्ण्य वस्तु से अटूट सम्बन्ध है। अस्तु काव्य के उपर्युक्त दोनों पद के आधार पर ही हम यहाँ रत्नाकर जी की काव्य-साधना पर विचार करेंगे।

रत्नाकर का भाव-पक्ष—रत्नाकर जी भावुकहृदय एवं रसिक कवि थे लक्ष्मी की उन पर अपार कृपा थी। साथ ही अयोध्या के राज-घराने से सम्बन्धित होने के कारण वे राजसी-विलास और आमोद-प्रमोद से पूर्ण परिचित थे। स्वयं भी वे ठाट-बाट से रहते थे। उनके बिछाने के वस्त्रों तक में इत्र लगाया जाता था। इन सब बातों से हमें रत्नाकर जी की शृंगार-प्रियता का पता चलता है। फारसी और उर्दू के वे श्रेष्ठ विद्वान् थे इसलिये उनकी शृंगारिक प्रवृत्ति को उद्दीप्त होने का और भी अवसर मिल गया। अतः शृंगार-निरूपण करने में ही उनका भावुक हृदय अधिक रमा है। शृंगार-निरूपण में उदात्त भावों जैसे लज्जा, उल्लास, विलास, संकोच आदि भावों की अभिव्यक्ति

रत्नाकर जी ने बड़ी ही मार्मिकता और सफलता से की है। निम्नांकित भावपूर्ण चित्र देखिये जिसमें ऊपर से तो कृत्रिम झुँझलाहट दिखाई देती है किन्तु आन्तरिक हर्ष प्रकट होता है :—

"गूँथन गुपाल बैठे बेनी बनिता की आप,
हरित लतानि कुंज माहि सुख पाइ कै।
कहै रतनाकर सँवारि निरवारि बार,
बार-बार विवस विलोकत बिकाइ कै॥
लाइ उर लेत कबौं फेरि गहि छोर लखैं;
ऐसे रहे ख्यालनि मैं लालन लुभाइ कै।
कान्ह-गाति जानि कै सुजान मन मोद मानि,
करत कहा हो कह्यौ मुरि मुसकाइ कै॥"

'करत कहा हो' में स्त्री-सुलभ कुट्टमित अनुभाव की स्वाभाविक अभिव्यक्ति सुन्दर एवं प्रशंसनीय है।

रत्नाकर जी की अभिव्यक्ति में स्वाभाविकता और कलात्मकता का मणि-कांचन संयोग है। इसीलिये उनकी रचनायें इतनी लोक-प्रिय हैं। खड़ी बोली के इस युग में आज भी उनकी रचनाओं का मूल्य कम नहीं हुआ है। छद्म वेशधारी कृष्ण और राधा की अनोखी भेंट का अद्भुत दृश्य भी द्रष्टव्य है :—

चंचल चारु सलोनी तिया इक, राधिका के ढिग आइ अजानी।
दै कर कागद एक कह्यौ यह, रीझिवौ मोल है याकौ सयानी॥
चित्र तै दीठि चितेरिनि ओर, चितेरिनि तैं पुनि चित्र पै आनी।
चित्र समेत चितेरिनि मोल लै, आपु चितेरिनि हाथ बिकानी॥

संयोग शृङ्गार के अन्तर्गत रत्नाकर जी के फाग वर्णन भी बड़े ही अद्भुत एवं रंगीन हैं। राधा-कृष्ण की होली का निम्न दृश्य देखिये :—

लाल पै गुलाल की चलाई राधिका जो मूठि,
भूठि है परी सो कर-कंपन तैं छोटी है।
कहै रतनाकर सम्हारि पिचकारी उन,
प्यारी कुच-कोर कौं निहारि इत जोटी है॥

नैकु नैन सौंहैं तैं टरैं न इनके सौंभार,
हुरि मुसुकाइ जो पिछौहैं चोट ओटी है।
चोटी लहरो जो छुरि पीठि पै सुहागिनि की,
नागिनि ह्वै कान्ह के करेजे वह लोटी है॥

अन्तिम दो पंक्तियों में हुई भाव-व्यंजना कितनी कलापूर्ण, स्वाभाविक हृदयग्राही है।

संयोग-शृङ्गार के सजीव वर्णनों के समान ही उनका वियोग-शृङ्गार है। वियोग विरही और विरहिणी दोनों के लिये व्याधि है। इसमें नेत्र जी भर के रो लेते हैं। प्रिय को देखे बिना नैनों को चैन नहीं पड़ता :—

"कीजिये हाय उपाय कहा
अपने सिरराहवे कों हमैं दाहति।
रूप सुधा-रतनाकर को सु—
चलासन काज निरंतर नाहति॥
और कहौं किनहूँ की नहीं
अँखियाँ दुखियाँ उतही कौं उमाहति।
देखी भईं दिन साथ अमाप के
देख्यौ चहैं पुनि देखिबौ चाहति॥

प्रेम की सूक्ष्मताओं को रत्नाकर जी ने देखा ही नहीं उनका मार्मिक अनुभव भी किया था। इसीलिये उनके प्रेम वर्णन में अस्वाभाविकता कहीं नहीं दिखाई देती। निम्न कवित्त में विरहिणी के मर्मस्पर्शी उद्गार देखिये :—

[illegible] हूरी मगन लगन भी लगाये हाय,
[illegible] उर [illegible] सुजान प्रान-प्यारे की।
कहै रतनाकर [illegible] सुमार [illegible],
[illegible] किरि [illegible] की॥
[illegible] की [illegible] है [illegible],
[illegible] [illegible] हमारे की।
[illegible] के [illegible] है [illegible],
[illegible] [illegible] हमारे की॥

इनके अतिरिक्त उद्धवशतक में रत्नाकरजी का विरह-वर्णन अधिक मर्म-स्पर्शी है। कृष्ण, उद्धव के हाथ गोपियों के पास अपना संदेश भेजना चाहते हैं। उद्धव को समझाते समय भावावेश में उनका कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है। ऐसी दशा में कुछ कह सकना असंभव हो जाता है। वाणी के अभाव में उनकी आँसुओं से भीगी पलकें और तरल हिचकियाँ ही उद्धव को भली-भाँति समझा देती हैं :— "विरह-बिथा की कथा अकथ अथाह महा

कहत बनै न जो प्रवीन सुकबीनि सौं।
कहै रतनाकर बुझावन लगे ज्यौं कान्ह
ऊधौ कौं कहन हेत ब्रज जुवतीनि सौं ॥
गहबरि आयौ गरौ भभरि अचानक त्यौं
प्रेम परयौ चपल चुचाइ पुतरीनि सौं।
नैकु कही बैननि, अनेक कही नैननि सौं,
रही-सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सौं ॥"

इस प्रकार हम देखते हैं कि रत्नाकर जी ने अपनी रचनाओं में शृङ्गार-रस का जैसा परिपाक किया है, वैसा उनके युग का कोई अन्य कवि नहीं कर सका। शृङ्गार के अन्तर्गत श्रीगणेश अष्टक में रत्नाकर जी ने वात्सल्य के भी कुछ चित्र उपस्थित किये हैं। वात्सल्य के कारण गणेश जी का मुख चूमने को शंकर जी का मन मचल उठता है। किन्तु कुछ असुविधा देखकर वे केवल ओष्ठ फड़का कर ही रह जाते हैं। माता-पिता के हृदय में वात्सल्य का स्फुरण करने वाले गणेश जी की चंचल क्रीड़ा देखिये :—

"मंजु अवतंसनि पै गुंजरत भौंर-भीर,
मंद-मंद श्रौनंनि चलाइ बिकलावै है।
कहै रतनाकर निहारि अध चाँपे चख,
चूमिबे कौं संभु कौ अधर फरकावै है ॥
कुंडलि सुंडिका पसारि अनचीते चट,
कुंडल षडानन को छुवै पुनि लुकावै है।
दाबे मुख मोदक बिनोद में मगन दुमि,
गोद गिरिजा की गहे मोद उपजावै है ॥"

शृङ्गार के अतिरिक्त रत्नाकर जी की रचनाओं में वीर, रौद्र, करुण, हास्य, वीभत्स, अद्भुत और शान्त आदि सभी रसों का सम्य हुआ है। स्थानाभाव से यहाँ प्रत्येक रस का एक-एक उदाहरण दिय साम्प्रतिक होगा।

वीररस :—वीररस का स्थायीभाव उत्साह है। 'गंगावतरण' में व का चित्रण अत्यन्त ही सजीव हुआ है। अश्वमेधयज्ञ के घोड़े का अपहरण किये जाने पर अदृश्य शत्रु के प्रति सैनिकों का क्षोभ निम्न द्रष्टव्य है :—

> "कढ़ी परति करवाल कोस सों चमकि-चमकि कै।
> निकसे आवत बान तून सौं तमकि-तमकि कै॥
> उठि-उठि कर रहिजात कसकि तिनके वाहन कों।
> पै न लगति अरि-खोज ओज सौं उत्साहन कौं॥

रौद्ररस :—रौद्र रस के निरूपण में भी रत्नाकर जी को पर्याप्त स प्राप्त हुई है। रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। क्रोध में विपक्षी व डालने की इच्छा प्रबल हो जाती है। कौरव-सभा में कृष्ण के रौद्ररूप का देखिये :—

> त्रिकुटी तनेनी जुटी-भृकुटी विराजैं वक्र,
> तोलैं दल चक्र कर डोलै थरकत हैं।
> कहै रतनाकर त्यौं रोष की तरंग भरे,
> रोषित-उमंग अंग-अंग फरकत हैं॥
> कर्न दुरजोधन दुसासन की मान कहा,
> प्रान इनके तौ पांगुरी में खरकत हैं।'
> भीषम औ द्रोन हू सौं बनत न हारै डीठि,
> मीडि हैं निहारे नैन-तारे तरकत हैं॥

भयानक रस :—इस रस का स्थायी भाव भय है। 'गंगावतरण' में ऐ सुन्दर स्थल ऐसे हैं जहाँ भयानक रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। ब्रह्म कमण्डल से निकलने वाली गंगा की धमक से अखिल ब्रह्माण्ड भय विह्व हो जाता है—

"इत सुरसरि की धाक धमकि दिग्गज मद-भागे।
उरग सुरासुर दिगप विकल आतुर लागे ॥
दहलनि दसौं दिसा-पाल दिग्गज-गन दल दल धावत।
दिग्गयन्द दिगदन्त न दबनि दल अभरि अभावत ॥
नभ-मण्डल पवमान-भानु-रथ चकित भयो पुन।
चन्द चकित रहि गयो चकित जिगरे सावधान ॥
मौन रह्यो तजि मौन भयो सब मौन मनाधन।
कंचन भये सबहि कहा करि है करुनाकन ॥"

उपर्युक्त छन्दों में भयानक रस के सम्पूर्ण उपकरणों का निर्वाह बड़े ही कलापूर्ण ढंग से हुआ है।

करुण रस:—करुण रस की अभिव्यक्ति रत्नाकर जी ने बड़ी ही मार्मिकता से की है। उन्होंने अपने वर्णनों में ऐसी परिस्थितियों का संघटन किया है जो शोक को उद्दीप्त करने में सहायक होती हैं। इस रस का स्थायी भाव शोक है। 'गंगावतरण' में जब अंशुमान साठ हजार सगर पुत्रों की मृत्यु का भयंकर समाचार लेकर राज मंदिर में राजा के सम्मुख उपस्थित होता है उस समय वहाँ शोक का समुद्र उमड़ पड़ता है। हृदय विदीर्ण करने वाले समाचार को सुनकर सब लोग सिर धुनने लगते हैं और रानियों की तो बहुत भयप्रद स्थिति हो जाती है:—

"लगे सकल सिर धुनन करन करुना की माची।
मनु बनाइ बहु वपुष सकन निहि मण्डप नाच्यौ ॥
लगीं करन पछाड़ धाड़ मारन सब रानी।
मानहु माछा मछि तलफि गगरी अकुलानी ॥
भयौ भूप अङ्ग रूप शृङ्ग के रंग सिराये।
वज्रघात सहस्र साठ संगहिं सिर आये ॥
कढ्यौ कंठ नहिं बैन न नैननि आँसु प्रकास्यौ।
आनन भाव-विहीन गाँव ऊजड़ लौं भास्यौ ॥"

एक साथ ही साठ हजार वज्रपात से आहत हो राजा जड़वत रह गये और उनके शरीर के अंगों का स्वाभाविक रंग जाता रहा। वस्तुतः इन छन्दों में

"जहँ तहँ मज्जा मांस रुधिर लखि परत बगारे।
जित तित छिटके हाड़ स्वेत कहुँ-कहुँ रतनारे॥
कोउ कड़ाकड़ हाड़ चाबि नाचत दै तारी।
कोऊ पीवत रुधिर खोपरी को करि प्याली॥
कोउ अँतड़िन की पहिरि माल इतरात दिखावत।
कोउ चरबी लै चोप सहित निज अंगनि लावत॥
कोउ मुण्डनि लै मानि मोद कंदुक लौं डारत।
कोउ रुण्डनि पै बैठि करेजौ फारि निकारत॥"

उपर्युक्त छन्दों में रुधिर, मांस, हड्डी, अन्तड़ी, आदि घृणित वस्तुओं का वर्णन है। पढ़ते ही ग्लानि का अनुभव हो जाता है। अतः यहाँ वीभत्स रस का सजीव चित्रण हुआ है।

अद्भुत रस :—इसका स्थायी भाव विस्मय है। कवि ने अद्भुत रस के भी बड़े विस्मयकारी चित्र उपस्थित किये हैं, द्रौपदी के चीरहरण के दृश्य को देखकर कौरव सभा की दशा निम्न पद्य में देखिये :—

"अम्बर लौ अम्बर अनंत द्रोपदी को देखि,
सकल सभा की प्रतिभा यों भई दंग है।
कोऊ कहै अन्ध-भूप-मोह-अन्ध नासन कौं,
चारु चन्द्रिमा की चली चादर अभंग है॥
कोऊ कहै कुरु-कुल-रूप-पाप खन्डन कौं,
उमड़नि अखिल अखंड-धार-गंग है।
मेरे जान दीन-दुख-द्वन्द्व हरिबौ कौं यह,
करुना - अपार - रत्नाकर - तरंग है॥"

शान्त रस :—इस रस का स्थायी भाव शम है। मनुष्य अपनी प्रौढ़ावस्था को पार कर जब वृद्धावस्था में पदार्पण करता है तो वह प्रायः संसार से विरक्त सा हो जाता है। उसका मन अब संसार के राग द्वेष, इच्छा, चिन्ता आदि से निष्कृति पाना चाहता है। रत्नाकरजी का मन भी वृद्धावस्था में संसार से विरक्त हो वैराग्य की ओर उन्मुख हो गया था। इसी स्थिति में उन्होंने शान्त-रस की उच्चकोटि की कवितायें लिखीं।

फूल फिरत कहो तो तुम
यार्को तो महत्ता सत्ता सब कछु
कहै रत्नाकर विडम्बना विनि
जीवन के चित्र सौं न अधिक प्रमा
हाँ सों नहीं होति औ नहीं सों होति हाँ
होते हो चहैयनि नहीं सौं रुचि मान
इति भव सागर में स्वास श्रास हो पै
पानी के बबूले सी थिरानी-जिन्दगानी

इस प्रकार रत्नाकरजी के काव्य में सभी रसों का प
हुआ है। यह सब होते हुये भी वह प्रधानतः शृङ्गार के ही

रत्नाकर का कलापक्ष—कवि जिन उपकरणों के
व्यक्ति को चमत्कारपूर्ण, शृङ्खलाबद्ध एवं सुन्दरतम बनाने
है वे सब उपकरण कलापक्ष के अन्तर्गत आते हैं। कलापक्ष के
है—भाषा, छन्द, अलंकार और वर्णन, यहाँ हम रत्नाकरजी
प्रत्येक उपकरण पर संक्षेप में विचार करेंगे।

भाषा—भावों की अभिव्यक्ति का एकमात्र साधन भाषा
आधार शब्द है। शब्दों का सुन्दर चयन, गुम्फन और सुव्यवस्थि
भाषा को भावों की अभिव्यक्ति के लिये क्षमता प्रदान करता है
भाषा भावानुकूल नहीं होती तब तक उसमें मन को मोह लेने की
आती। जिस काव्य की भाषा भावानुगामिनी तथा संगीतात्मकता
प्रोत नहीं होती वह काव्य उत्तम काव्य की कोटि में स्थान प्राप्त
पाता। भावानुकूल भाषा ही रसोत्कर्ष करने में कवि को सहायता पहुँ
इसी दृष्टि से प्राचीन आचार्यों एवं काव्य शास्त्रियों ने काव्य की भाषा
माधुर्य और ओज व [illegible] गुण माने हैं। प्रसाद-गुण-युक्त काव्य को
उसका अर्थ शीघ्र ही हृदयंगम हो जाता है। [illegible]

जाता है। इस दृष्टि से रत्नाकरजी की सभी रचनाएँ प्रसाद गुण से ओत-प्रोत हैं। 'उद्धवशतक' में से एक उदाहरण लीजिये—

> नैननि के आगैं नित नाचत गुपाल रहैं,
> ख्याल रहैं सोई जो अनन्य रसवारे हैं।
> कहै रत्नाकर सो भावना भरी यै रहै,
> जाके चाव भाव रचैं उर में अखारे हैं।
> ब्रह्म हूँ वाए दैनारि ऐसियै बनी जो रहै,
> तौ तौ सहैं सीस सबै दैन जो तिहारे हैं।
> यह अभिमान तो गवैहैं ना गए हूँ प्रान,
> हम उनकी हैं वह प्रीतम हमारे हैं।

प्रसाद गुण के अतिरिक्त रत्नाकरजी की भाषा में माधुर्य और ओजगुण भी यथा स्थान देखने को मिलता है। माधुर्य गुण-युक्त कविता में मीलित वर्ण, टवर्ग तथा लम्बे-लम्बे समासों का अभाव होता है तथा कोमल कान्त पदावली युक्त सानुनासिक वर्णों की प्रधानता रहती है। इसके विपरीत ओजगुण प्रधान काव्य में टवर्ग संयुक्त वर्ण तथा लम्बे-लम्बे समासों की प्रचुरता होती है। सुकुमार भावों की व्यंजना में रत्नाकरजी की भाषा सर्वत्र माधुर्य गुण से ओत-प्रोत है। उदाहरण के लिये—

> सुनि-सुनि ऊधव की अकह कहानी कान,
> कोऊ थहरानी, कोऊ था नहिं थिरानी हैं।
> कहै रतनाकर रिसानी, बररानी कोऊ,
> कोऊ बिललानी, बिकलानी बिथकानी हैं।
> कोऊ सेद-सानी, कोऊ भरि दृग-पानी रहीं,
> कोऊ घूमि-घूमि परीं भूमि मुरझानी हैं।
> कोऊ स्याम-स्याम कैं बहकि बिललानी कोऊ,
> कोमल करेजौ थामि सहमि सुखानी हैं॥

अब एक उदाहरण रत्नाकरजी की ओज गुण युक्त भाषा को भी देखिये जिसमें कठोर भावों की अभिव्यक्ति हुई है—

दुर्ग तें तड़पि तड़िता सी तड़कै ही कढ़ी,
फड़कि न पाए फड़फड़ाई अरे मुरगा।
कहै रतनाकर चलावन लगी यौं बान,
मानौ फन फैले फुफकारी मारि उरगा।
आशा छाँड़ि प्रान की अमान की दुहाई माँड़ि,
भागे जान गब्बर अकब्बर के गुरगा।
देवी दुरगावती मतेभ्भ-दल गेरे देती,
मानौ दैत्य-दलनि दरेरे देति दुरगा॥

इस छन्द में ओज गुण पूर्ण कठोर भावों की सफल अभिव्यक्ति हुई है। इ गुणों के अतिरिक्त भाषा को सशक्त बनाने में लोकोक्तियों और मुहावरों क भी बड़ा हाथ होता है। रत्नाकरजी ने उर्दू फारसी के विद्वान होने के नाते अपनी भाषा में मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग जी भरकर किया है। यथा—

सिख कौन क देति कहा सजनी, हम कौं विष-बेलि ही बोइबो है।
रतनाकर त्यौं कुल-कामि-प्रपंचनि, लै कल-कान न होइबौ है।
उर नींदग कैं सो डराहि भलैं जिनकौं सुख नीदनि सोइबौ है।
बरजो वृथा टारिबौ सौं अँसुवा, हमैं जीवन सौं कर धोइबौ है॥

उपर्युक्त सवैया में 'विष-बेलि बोना', 'सुख की नींद सोना', 'आँसू टालना' तथा 'जीवन से हाथ धोना' आदि मुहावरों का प्रयोग हुआ है। 'जीवन' शब्द से जिन्दगी और 'पानी' दोनों ही अर्थ निकलते हैं। हाथ पानी से ही धोये जाते हैं अतः 'जिन्दगी' के स्थान पर 'जीवन' के प्रयोग से अर्थ में चमत्कार आ गया है। इसी प्रकार 'अन्धे के आगे रोना, और अपने दीदे खोना', 'होम करते हाथ जलना' आदि लोकोक्तियों का प्रयोग भी रत्नाकरजी की भाषा में द्रष्टव्य है। यथा—

हाय तात यह भयौ घात विन बात तिहारौ।
होम करत कर जर्‌यौ पर्‌यौ विधि वाम हमारौ॥

'होम करते हाथ जलना' कहावत का यहाँ विदग्ध प्रयोग हुआ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रत्नाकरजी का ब्रजभाषा पर पूरा अधिकार था। अपने अध्ययन के बल से वे संस्कृत, अरबी, फारसी तथा काशी की बोली के शब्दों

को अनायास ही ब्रजभाषा के साँचे में ढाल लेते थे। उनकी रचनाओं में विभिन्न भाषाओं के शब्द इस खूबी से प्रयुक्त हुये हैं कि उनके कारण ब्रजभाषा का स्वरूप विकृत होने के स्थान पर और भी निखर गया है। हौसला, गरम, जुलम, वजीफा, लतीफा, खजर आदि विदेशी शब्द तथा चाँदना, झमेला, खपाना, गारना, तिताई आदि देशी शब्दों का प्रयोग रत्नाकरजी ने निसंकोच किया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रत्नाकर जी की भाषा में अर्थ-गांभीर्य, पद-विन्यास चातुर्य, स्वाभाविकता, सरसता, चमत्कारिता आदि गुण कूट-कूट कर भरे हुये हैं।

छन्द—भावों को सुनियन्त्रित करने तथा उन्हें संगीतात्मकता प्रदान करने के लिये कुशल कवि अपने काव्य में रसानुकूल छन्दों का चयन करता है। इस दृष्टि से रत्नाकर जी के छन्द संगठन पर विचार करने से हमें विदित होता है कि उन्होंने अपनी मुक्तक रचनाओं में कवित्त और सवैया छन्द का तथा प्रबन्ध काव्यों में रोला छन्द का प्रयोग किया है। 'हरिश्चन्द', 'कलकाशी', 'गंगावतरण' हिंडोला आदि सभी रचनाओं में रोला छन्द प्रयुक्त हुआ है। इन छन्दों के प्रयोग में रत्नाकर जी को जैसी सफलता प्राप्त हुई है वैसे उनके युग के किसी कवि को नहीं हुई। इन छन्दों के अतिरिक्त उन्हें 'दोहा' छंद भी प्रिय है। 'प्रकीर्ण पद्यावली' में उनके दोहे संग्रहीत हैं जो बिहारी के दोहों की टक्कर के हैं। इस प्रकार उपर्युक्त चार छन्दों पर रत्नाकर जी का असाधारण अधिकार था।

अलंकार—काव्य का साध्य भाव-व्यंजना है। अलंकार उसका साधन है। जिस प्रकार रूप सम्पन्न युवती अलंकारों से आभूषित होकर अधिक शोभाशालिनी हो जाती है उसी प्रकार कविता-कामिनी भी अलंकारों को धारण करके अत्यन्त आकर्षक एवं मोहक बन जाती है। सच्चा कवि वही है जो अलंकारों के प्रयोग से हृदय के भावों को उन्मीलित करके उन्हें आकर्षक और सजीव रूप में चित्रण कर सके। केवल पांडित्य-प्रदर्शन के हेतु अलंकारों की प्रदर्शनी लगाने वाले कवि वस्तुतः कवि नहीं कहे जा सकते। अस्पष्ट अनुभूति को स्पष्ट बनाकर सहृदय में तन्मयता उत्पन्न करने में ही अलंकारों की उपादेयता है। अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग ही तन्मयता का उद्रेक करने में समर्थ होता है। उनका बरबस और अधिक मात्रा में प्रयोग कविता की आत्मा को बोझिल बना देता

है और रसानुभूति में बाधा उपस्थित करता है। यहाँ हम रत्नाकरजी के अलंकार विधान पर विचार करके देखना चाहते हैं कि उनके द्वारा प्रयुक्त अलंकार भावाभिव्यक्ति में बाधक हुये हैं अथवा सहायक बनकर आये हैं। 'उद्धव शतक' का निम्नांकित कवित्त देखिये इसमें कवि ने सांग रूपक का निर्वाह किया है:—

राधा-मुख मंजुल-सुधाकर के ध्यान ही सौं,
प्रेम-रतनाकर-हियैं यौं उमगत है।
त्यौंहीं बिरहातप प्रचण्ड सौं उमंडि अति,
ऊरध उसास को झकोर यौं जगत है॥
केवट विचार कौ बिचारौ पचि हारि जात,
होत गुन-पाल ततकाल नभ-गत है।
करत गँभीर धीर-लंगर न काज कछू,
मन कौ जहाज डगि डूबन लगत है।'

चन्द्रमा के आकर्षण से समुद्र में ज्वार-भाटा आता ही रहता है। इसी सामान्य प्राकृतिक घटना को लेकर कवि ने अपने साङ्गरूपक का निर्माण किया है। राधा के मुख रूपी चन्द्र के आकर्षण से कृष्ण का हृदय रूपी समुद्र प्रेम से उमड़ने लगता है। विरहोच्छ्वास की भयंकर आँधी से घबरा कर विचार रूपी केवट हार कर कर्त्तव्यहीन हो जाता है। विवेक रूपी गुण का पाल आकाश में उड़ जाता है। ऐसे समय धैर्य रूपी लंगर भी कुछ काम नहीं दे रहा है अतः मनरूपी-जहाज डगमगा कर डूबने लगता है। इस साँगरूपक में कवि की कुशलता देखते ही बनती है। यहाँ अलंकारों का निर्वाह बड़े ही स्वाभाविक ढंग से हुआ है। कवि ने उनकी खींचतान नहीं की है। सांगरूपक के ऐसे कई उदाहरण हैं जिनके प्रयोग में रत्नाकर जी पूर्ण रूप से सफल हुये हैं। रूपक के अतिरिक्त रत्नाकर जी के काव्य में अनुप्रास, अन्योक्ति, संदेह, भ्रान्तिमान, दीपक, लोकोक्ति, प्रतीप, अप्रस्तुत प्रशंसा, अपन्हुति परिकरांकुर, यमक, असंगति, विरोधाभास, उपमा, उत्प्रेक्षा, विभावना, अतिशयोक्ति, स्मरण, व्याजस्तुति आदि अलंकारों का भी सफल प्रयोग हुआ है। कुछ उदाहरण और लीजिये:—

संदेहालंकार— कै निज नायक दंघो विलोकत व्याल पास मैं।
तारनि की सेना उदड उतरति अकास तै॥
कै सुर-सुमन-समूह आनि सुर-जह बुहारत।
हर-हर करि हर-सीस एक संगहि सब डारत॥

कवि ने यहाँ आकाश से गिरती हुई गंगा की धारा का चित्र-सा खींच दिया है।

उत्प्रेक्षा— निकस कमंडल तै उमंडि नभ-मंडल खंडिति।
धाई धार अपार बेग-सौं वायु विहंडति॥
भयो घोर अति शब्द धमक सौं त्रिभुवन तर्जे।
महा मेघ मिलि मनहु एक संगहि सब गर्जे॥

आकाश से गंगा के अवतरण होते समय अखिल ब्रह्माण्ड में घोर ध्वनि व्याप्त हो गई उसका वर्णन रत्नाकर जी ने उपर्युक्त छन्द में किया है। यहाँ उत्प्रेक्षा के सम्प्रयोग से उन्हें अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है।

अनुप्रास— छोभ-छलक ह्वै गई प्रेम की पुलक अंग में।
पहरनि के दरि दम परे उछरति तरंग मे॥
भयो वेग उद्वेग पेंग छाती पर धरकी।
हर हरान पुनि निपटि मुरट उघरो हर-हर की॥

यहाँ अनुप्रास की छटा के साथ अर्थ-व्यंजन का सुन्दर चमत्कार भी देखते ही बनता है।

असंगति— नीर को प्रवाह बाढ्यौ नैनन के तीर बढ़े,
धीर बही ऊधौ उर अचल-रमाने मैं॥

विरोध— गतन विरु ध्यारे बगन मोहिय-दर्पन माँहि।
पैंगन आत लौं-त्यौं सखी दई ही त्यौं बिलगाँहि॥

इस प्रकार अलंकारों के एक-एक अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिनमें रत्नाकर जी को आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई है।

इस विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि उनका अलंकार-सौष्ठव भावों की अभिव्यक्ति में सर्वत्र ही साधक हुआ है। चमत्कारों के प्रयोग के साथ

गद्दरि आयौ गरौ भभरि अचानक त्यों,
प्रेम परयो चपल चुचाइ पुतरीन सौं।
नैंकु कही बैननि, अनेक कही नैननि सौं,
रही सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सौं॥

गंगावतरण में रत्नाकरजी की वर्णनात्मक शैली दृष्टव्य है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि रत्नाकरजी की काव्य कला में कला पक्ष और भाव पक्ष के सुन्दर समन्वय से युक्त ब्रजभाषा की स्वाभाविक-संगीतात्मकता का माधुर्य अत्यन्त ही हृदयस्पर्शी है।

ब्रजभाषा-कवियों में रत्नाकरजी का स्थान—रत्नाकरजी प्रमुखतः मध्य-कालीन कवि थे। रीतिकाल की प्रायः समस्त साहित्यिक प्रवृत्तियाँ उनके काव्य में सन्निहित हैं। किन्तु उन पर उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। रीति-काल के कवियों की भाँति यद्यपि रत्नाकरजी ने लक्षण-निरूपण के साथ उदाहरण उपस्थित कर आचार्यात्मक प्रदर्शन नहीं किया फिर भी उनकी रचनाएँ उनके आचार्यत्व की ही परिचायिका हैं। बिहारी, प्रीतम, रसनिधि, पजनेस, नेवाज आदि ऐसे कवि थे जिन्होंने रीति, गुण, दोष, अलंकार, नायिका भेद इत्यादि से दूर रह कर कविताएँ कीं किन्तु उनका ध्यान लक्षणों पर केन्द्रित अवश्य रहता था। रत्नाकरजी का काव्य भी उपर्युक्त कवियों की कोटि में आता है। जैसे काव्य-सिद्धान्तों को न जानने वाला पाठक इन कवियों की कविताओं का रसास्वादन नहीं कर सकता उसी भाँति रत्नाकरजी की कविताओं का भी पूरी तरह रस ग्रहण करना आसान नहीं है। रीतिकालीन कवियों की भाँति नख-शिख, नायिका भेद, षट् ऋतुवर्णन आदि को यद्यपि रत्नाकरजी ने स्वतंत्र रूप से ग्रहण नहीं किया किन्तु इन सबके एक से एक सुन्दर उदाहरण उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं।

रत्नाकरजी प्रधानतः शृङ्गार-रस के कवि थे। फारसी और रीतिकालीन कवियों के अध्ययन तथा उनके युग की ब्रजभाषा काव्य की शृङ्गारिक धारा ने उनकी रसिक मनोवृत्ति को और भी उद्दीप्त कर दिया था। इसीलिये उनके संयोग शृङ्गार के वर्णन कहीं-कहीं अधिक मांसल हो गये हैं। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि संयोग-शृङ्गार वर्णन करने में बहुत कम कवि उनकी समता कर सकते

है। उन्होंने शृङ्गार लहरी में जहाँ संयोग पक्ष का सुन्दर निरूपण किया वहाँ उद्धव शतक में वियोग पक्ष का हृदयग्राही एवं मर्मस्पर्शी चित्रण उपस्थित किया है।

रत्नाकरजी के काव्य में प्रकृति-चित्रण, सौन्दर्य अथवा शृङ्गार वर्णन प्रायः रीति बद्ध है। उनकी विभिन्न रचनाओं में विभाव, अनुभाव, सञ्चारी, दूती उद्दीपन आदि परम्परागत परम्परायें अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त अनेक स्थलों पर रूपक, यमक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, श्लेष जैसे परम्परागत अलंकारों द्वारा उनकी अभिव्यक्ति को चारुता प्रदान की गई है।

जैसे रीतिकाव्य में प्रबन्धकाव्य, वर्णनात्मक-काव्य, गेय अथवा मुक्तक काव्य लिखे गये उसी प्रकार रत्नाकरजी ने भी प्रायः उपर्युक्त सभी काव्य रूपों में अपनी विभिन्न रचनाएँ हिन्दी साहित्य को भेंट की। उनका 'हरिश्चन्द्र' प्रबन्ध काव्य है एवं 'हिंडोला' और 'कल-काशी' वर्णनात्मक रचनाएँ हैं। उनके 'गंगावतरण' को भी 'प्रबन्धकाव्य' कहा जा सकता है। 'प्रकीर्ण पद्यावली' और 'शृङ्गार लहरी' उनकी मुक्तक रचनाएँ हैं। इस प्रकार रीतिकालीन प्रायः सभी काव्य-रूपों में 'रत्नाकरजी' की प्रतिभा और कला प्रतिफलित हुई दिखाई देती है।

अस्तु रीतिकाल की भाषा, शैली, भाव, कल्पना, अलंकार प्रियता, शृङ्गारिकता, आचार्यत्व आदि सभी विशेषताएँ रत्नाकरजी की रचनाओं में विद्यमान हैं। इस दृष्टि से रीतिकाल के ब्रजभाषा कवियों में रत्नाकरजी का स्थान सर्वोपरि है। अपनी काव्य कुशलता में उन्होंने रीतिकाल के समस्त कवियों को पीछे छोड़ दिया है। रीतिकाल की विशेषताओं के अतिरिक्त रत्नाकरजी की कला में भक्तिकालीन कवियों की भावुकता तथा वर्तमान युग की बौद्धिकता भी विद्यमान है। इसीलिये उनकी रचनाएँ भावुकता एवं बौद्धिकता से समन्वित दिखाई देती हैं। निश्चय ही रत्नाकरजी ब्रजभाषा काव्य के अन्तिम कवि थे। उनके पश्चात् उनके स्थान की पूर्ति करने वाला अभी कोई कवि नहीं हुआ है।

आलोचनात्मक प्रश्नोत्तर

प्रश्न १—"उद्धव शतक में रीतिकालीन कलेवर में भक्तिकालीन आत्मा अवतरित हुई है।" इस कथन की सार्थकता प्रमाणित कीजिये।

उत्तर—हिन्दी में भ्रमरगीत-काव्य की परम्परा भक्तिकालीन कवियों से प्रारम्भ होती है। इस परम्परा का मूलाधार श्रीमद्भागवत है। भक्तिकालीन, कवियों ने इस प्रसंग के आधार पर ज्ञान मार्ग की अपेक्षा भक्ति मार्ग की श्रेष्ठता पर बल दिया है। निर्गुण ब्रह्म वस्तुतः ज्ञानियों के लिये उपयोगी है। जन साधारण के लिये तो ज्ञानमार्ग की अपेक्षा भक्तिमार्ग ही अधिक सुलभ तथा श्रेयस्कर है। सूरदास, नंददास आदि भक्त कवियों ने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये अपने-अपने ढंग में भ्रमरगीतों की रचना की। भ्रमरगीत का यह प्रसंग इतना मर्मस्पर्शी है कि रामजी के अनन्यभक्त तुलसीदास जी भी श्रीकृष्ण गीतावली में इस प्रसंग पर कुछ पद लिखने का मोह संवरण न कर सके। रहीम, मतिराम, देव, घनानन्द, सेनापति, दास, पद्माकर आदि मध्यकालीन सभी कवियों ने भी इस विषय पर काव्य रचना की है। इन कवियों ने कहीं भ्रमरगीत के इस प्रसंग को अलंकारों के उदाहरण स्वरूप में उपस्थित किया है और कहीं वियोग की मार्मिक अभिव्यंजना के लिये।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी भ्रमरगीत के प्रसंग पर कुछ कवित्त एवं सवैये लिखे हैं जिनमें नारी-हृदय की मार्मिक अभिव्यंजना की गई है।

भारतेन्दु युग के बाद आधुनिक काल के कवियों ने भी इस प्रसंग को अपने-अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। सत्यनारायण कविरत्न ने अपने भ्रमरगीत में राष्ट्रीय भावनाओं का समावेश करते हुये माता की ममता का सजीव चित्रण किया। अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 'प्रियप्रवास' में नारी हृदय की वियोग व्यथा के साथ लोक कल्याण की भावनाओं का सामंजस्य किया। मैथिलीशरण गुप्त ने कृष्ण तथा विभिन्न गोपियों के प्रेम को उदात्त रूप में उपस्थित किया। इसी प्रकार डा० रसाल ने भी गोपी-उद्धव संवाद का निरूपण किया है। रसालजी की गोपियों में भावुकता की अपेक्षा तार्किकता तथा बुद्धि की प्रबलता है।

रत्नाकर जी ने अपने 'उद्धवशतक' में इस प्रसंग को मध्यकालीन कवि के ढंग पर निरूपित किया है। उनके 'उद्धवशतक' में भक्तिकाल के कवियों व भावुकता तथा रीति-काल के कवियों की कलात्मकता का मणि-कांचन संयोग हुआ है। आधुनिक युग के बुद्धिवाद से भी रत्नाकर जी ने पूरा लाभ उठाया है। इस प्रकार उन्होंने इस पुराने विषय को अपनी अभिनव उक्तियों से भर कर उसे अत्यन्त हृदयहारी बना दिया है।

'उद्धवशतक' का प्रारंभ कवि ने अपनी नवीन कल्पना द्वारा किया है। कृष्ण एक दिन उद्धव के साथ यमुना स्नान करने जाते हैं। वहाँ वे एक मुरझाये हुये कमल को जल में बहता हुआ देखते हैं। वे उसे उठाकर सूँघते हैं। कमल में राधिका के शरीर की गंध पाकर उन्हें राधा का ध्यान हो आता है और वे मूर्छित हो जाते हैं। इस मौलिक-उद्भावना के द्वारा कवि को मनोविज्ञान के धरातल पर कृष्ण-उद्धव के वार्तालाप प्रारंभ करने का अवसर प्राप्त हो गया है। कृष्ण अपनी विरह वेदना उद्धव को सुना देते हैं। कृष्ण के कथनानुसार उद्धव ब्रज भूमि में पहुँचते हैं और ज्ञान के उपदेशों से गोपियों की विरह-वेदना दूर करने का प्रयास करते हैं। किन्तु गोपियों के प्रेमदर्श को देखकर उनका समस्त ज्ञान गर्व दूर हो जाता है। और वे प्रेम में विभोर होकर कृष्ण के पास लौट आते हैं। इस प्रकार दार्शनिक विचारों के द्वारा रत्नाकर जी ने उद्धवशतक में ज्ञान पर भक्ति की विजय दिखाई है।

यहाँ तक तो भ्रमरगीत प्रसङ्ग की बात रही। अब हम यहाँ उद्धवशतक के वाह्य अंग (कलेवर) पर संक्षेप में विचार करेंगे। 'उद्धवशतक' के अलंकार विधान को देखने से पता चलता है कि इस काव्य में रूपक, उपमा, श्लेष, यमक, उत्प्रेक्षा आदि प्रमुख अलंकारों का और कहीं-कहीं विभावना, असंगति, स्मरण आदि का सफलता पूर्वक प्रयोग हुआ है। रत्नाकर जी द्वारा प्रयुक्त ये सभी अलंकार भावोत्कर्ष में सहायक हुये हैं, बाधक नहीं। यद्यपि कहीं-कहीं ऐसे स्थल भी हैं जहाँ केवल चमत्कारप्रदर्शन हो सका है और भावभिव्यंजना में कमी रह गई है। उदाहरण के लिये निम्नांकित छंद देखिये:—

दाबि-दाबि छाती पाती लिखन लगायौ सब,
ब्यौत लिखिबे कौ पै न कोऊ करि जात है।

कहै रत्नाकर फुरति नाहि बात कछू
हाथ धरयौ हीतल थहरि थरि जात है॥
ऊधो के निहोरैं फेरि नैकु धीर जोरैं पर,
ऐसो अंग ताप को प्रताप भरि जात है॥
सूखि जात स्याही लेखिनी के नैक डंक लागें,
अंक लागैं कागद बररि बरि जात है॥

यह छंद कवि ने रीति कालीन कवियों से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण ही लिखा है। इसमें भावपक्ष अशक्त तथा चमत्कार प्रदर्शन सबल हो गया है।

रूपक अलंकार रत्नाकर जी का सर्व प्रिय अलंकार है। साङ्गरूपक के तो वे अद्वितीय स्रष्टा हैं। निम्न छंद उदाहरण के लिये द्रष्टव्य है:—

हेत-खेत माहि खोदि खाई सुद्ध स्वारथ की,
प्रेम-तृन गोपि राख्यौ तापै गमनौ नहीं।
करिनी प्रतीति-काज करनी बनावट की,
राखी ताहि हेरि हियँ हौंसनि सनौ नहीं॥
घात मैं लगे हैं ये बिसासी ब्रजबासी सबै,
इनके अनोखे छल छंदनि छनौ नहीं।
बारनि कितेक तुम्हैं बारन कितेक करैं,
बारन उबारन है बारन बनौ नहीं॥

यहाँ सागरूपक के साथ यमक अलंकार का निर्वाह भी बड़ी ही सुन्दरता से हुआ है। कृष्ण को समझाते हुये उद्धव कहते हैं कि ये ब्रजबासी बड़े स्वार्थी और विश्वासघाती हैं। इन्होंने तुम्हारे हित रूपी खेत में शुद्ध स्वार्थ की खाई खोद रखी है और उसे प्रेम रूपी तिनकों से ढक दिया है। इसी पर उन्होंने बनावटी हथिनी खड़ी करदी है उसे देखकर आपको उत्साहित नहीं होना चाहिये, आप तो स्वयं गज का उद्धार करने वाले हैं, फिर आप साधारण हाथी के समान मोहित क्यों हो रहे हैं? यहाँ साग रूपक और यमक की सहायता से उद्धव का कथन बड़ा ही प्रभावशाली हो गया है। उद्धवशतक में सागरूपक के ऐसे और भी कई उदाहरण प्राप्त होते हैं।

षड्ऋतु वर्णन के छः छंदों में श्लेष का जितना सुन्दर प्रयोग हुआ है अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। एक ही शब्द गोपियों और ऋतुओं के प[क्ष में] ठीक अर्थ देता है। वर्षा ऋतु के वर्णन में कवि ने श्लेष के साथ अन्य अलंकारों का समावेश भी निम्न छन्दों में किया है:—

> रहति सदाई हरियाई हिय-घायनि मैं,
> ऊरध उसास सो झकोर पुरवा की है।
> पीव-पीव गोपी पीर-पूरित पुकारति हैं,
> सोई रतनाकर पुकार पपिहा की है॥
> लागी रहै नैननि सौं नीर की झरी औ,
> उठै चित मैं चमक सो चमक चपला की है॥
> बिनु घनश्याम धाम-धाम ब्रज-मंडल में,
> ऊधौ नित बसति बहार बरसा की है॥

यहाँ 'हरियाई', 'चमक', 'घनश्याम' इत्यादि शब्द श्लिष्ट हैं। वर्षा-ऋतु सामान्य व्यापारों पर धारित सांगरूपक की कल्पना भी बड़ी ही सुन्दर बन प[ड़ी] है। बिना बादलों के वर्षा होने से विरोधाभास भी स्पष्ट है। कारण के अभा[व] में कार्य होने से श्लेष गर्भित उक्त-निमित्ता प्रथम विभावना भी मानी [जा] सकती है और अनुप्रास तो रत्नाकरजी की कविता का स्वाभाविक धर्म ही है। अन्य अलंकारों के उदाहरण भी 'उद्धवशतक' में पाये जाते हैं। अलंकारों [के] सफल प्रयोग करने के लिये मौलिक उद्‌भावनायें करने में भी रत्नाकरजी रीति-कालीन किसी भी कवि से पीछे नहीं हैं। चमत्कार प्रदर्शन में भी वे बड़े सिद्धहस्त हैं। निम्न छन्द उदाहरण के लिये देखिये:—

> टूँक-टूँक ह्वै हैं मन मुकुर हमारौ हाय,
> चूँकि हूँ कठोर बैन पाहन चलावौ ना।
> एक मनमोहन तो बसिकै उजारयो मोहिं,
> हिय में अनेक मनमोहन बसावौ ना॥

अब तक गोपियों के मन-मुकुर में कृष्ण का एक ही प्रतिबिम्ब दिखाई देता किन्तु उसके अनेक टुकड़े हो जाने से उसमें कितने ही प्रतिबिम्ब दिखाई देने लगेंगे। एक मनमोहन के हृदय में रहने से तो उनकी यह दशा है। फिर अनेक

मनमोहन के बस जाने से न मालूम उनकी क्या दशा होगी। उद्धव के प्रति कहे हुये गोपियों के इस कथन में कितना चमत्कार भरा हुआ है। इसी प्रकार अलंकार, छन्द, ध्वनि, रस, चमत्कार और वक्रोक्ति आदि काव्य-कला के सभी उपकरणों का सुन्दर सामंजस्य उद्धवशतक में हुआ है।

उद्धवशतक की भाषा भावानुकूल ओज, माधुर्य और प्रसादगुण युक्त है। रीतिकाल के कवियों द्वारा अपनाई हुई ब्रजभाषा को ही रत्नाकरजी ने ग्रहण किया है। उनकी भाषा में देव की माधुरी, बिहारी की विदग्धता, मतिराम की सरसता, घनानंद की लाक्षणिकता एवं पद्माकर की अनुप्रासप्रियता विद्यमान है। वाक्य विन्यास तथा शब्दचयन भी उन्होंने ठीक रीतिकालीन ढंग से किया है। ऋतुवर्णन द्वारा गोपियों की विरह व्यथा का वर्णन भी मध्यकालीन कवियों जैसा ही है। अतः यह स्पष्ट है कि उद्धवशतक का कलेवर पूर्णतः रीतिकालीन कला से समन्वित है। यहाँ तक तो उद्धवशतक के कलेवर की बात हुई अब हम यहाँ उसकी आत्मा पर विचार करेंगे।

आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा माना है। रसचर्वणा से जो आनन्द प्राप्त होता है वह अतीन्द्रिय अथवा लोकोत्तर माना जाता है। इस दृष्टि से हम यहाँ 'उद्धवशतक' पर विचार करके देखें कि उसमें रस की मधुर धारा प्रवाहित हो रही है अथवा नहीं, साथ ही यह भी ज्ञात करें कि यदि उसकी आत्मा है तो वह भक्तिकालीन है अथवा रीतिकालीन।

भ्रमर गीत काव्यों में 'उद्धवशतक' अपना विशिष्ट एवं उज्ज्वल स्थान रखता है। इस ग्रन्थ में रत्नाकरजी की भावना सूर और नन्ददास आदि कवियों की भक्ति-भावना से प्रतिस्पर्द्धा करती है। उनकी भाव व्यंजना सर्वत्र मर्मस्पर्शिणी, स्वाभाविक एवं आवेगमय है। इसके लिये उन्होंने अनुभावों की सजीव योजना की है। उनके अनुभाव विधान में भाव-धारा अनवरत प्रवाहित होती रहती है। देखिये :—

सहचरि आयो मरो, भभरि अचानक त्यों,
प्रेम परयो चपल चुचाइ पुतरीनि सौं।
नैकु कही बैननि अनेक कही नैननि सौं,
रही-सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सौं॥

अन्तिम पंक्ति में सात्विक भावों की कैसी स्वाभाविक योजना की गई जिस कार्य को कवि अपनी समस्त करामातें दिखाकर भी सम्पन्न नहीं कर उसे रत्नाकरजी ने अपने सूक्ष्म कौशल द्वारा पूर्ण कर लिया है। उद्धव श में ऐसे कई छन्द हैं जहाँ अनेक सात्विकों और अनुभावों की सर्वांग योजना गई है।

'उद्धव शतक' में मूक भाव व्यंजना के भी कई उदाहरण प्राप्त हैं जिनमें कवि को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। कृष्ण गोपियों से कहने के उद्धव से बहुत कुछ कहना चाहते हैं लेकिन भावातिरेक के कारण कुछ नहीं पाते :—

> "कहा कहें ऊधो सों कहें हूँ तो कहाँ लौं कहें,
> कैसे कहें, कहें पुनि कौन सी उठानि तैं।
> तौलों अधिकाई तैं उमगि कंठ आइ भिंच,
> नीर ह्वै बहन लागी बात अँखियान तैं॥"

कृष्ण रुदन करने लगते हैं लेकिन इस अवस्था में भी उन्हें कुछ कह सकने की आशा रहती है इसलिये वे उद्धव के रथ के साथ ही लगे चले जाते हैं—

> उमँसि उसाँसनि सौं बहि बहि आँखिन सौं,
> भूरि भरे हिय के हुलास ना उरात हैं।
> सौरे तपे विविध सँदेसनि की बातनि की,
> बातनि की झोंक में लगेई चले जात हैं॥

मौन भाव-व्यंजना का इतना उत्कृष्ट और सुन्दर उदाहरण अन्यत्र कहाँ मिल सकता है।

गोपियाँ अपने दुःख को प्रिय से इसलिये नहीं कहना चाहतीं कि उसे सुनकर उनको भी दुःख होगा। कवि ने गोपियों की इस गहन अनुभूति की अभिव्यञ्जक शैली द्वारा निम्नांकित छन्द में कितनी स्वाभाविकता से व्यक्त किया है :—

> औसर मिले औ सरताज कछु पूछहि तौ,
> कहियौ कछून दसा देखी सो दिखाइयौ।

आइ कै कराहि नैन नीर अवगाहि कछु,
कहिबे कौं चाहि हिचकी लै रहि जाइयौं ॥

कहना कुछ नहीं केवल कराह कर रह जाने में कितनी मार्मिकता भरी हुई है।

प्रेम कुछ होता ही ऐसा है कि जिससे हो गया फिर वह उससे अच्छे को भी नहीं चाहता। गोपियाँ कृष्ण के जिस रूप से प्रेम कर चुकी हैं उस रूप को वे छोड़ने को बिलकुल तैयार नहीं होतीं। वे बड़े अभिमान से उद्धव से कहती हैं :—

(१) चेरी हैं न ऊधो काहू ब्रह्म के बबा की हम,
सूधे कहे देत एक कान्ह को कमेरी हैं।

(२) वाही मुख मंजुल की चहति मरीचैं सदा,
हम को तिहारी ब्रह्म ज्योति करिबौ कहा।

गोपियाँ तो कृष्ण की अनन्य आराधिका हैं अतः वे कहती हैं :—

(१) यह अभिमान तौ गवैहैं ना गए हूँ प्रान,
हम उनकी हैं वह प्रीतम हमारे हैं।

(२) वै तो हैं हमारे ही हमारे ही हमारे औ,
हम उन हीं की उन हीं की उन हीं की हैं ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि उद्धव शतक की उक्तियाँ रस में पूर्णतः सराबोर हैं। उद्धव शतक विप्रलम्भ शृङ्गार का काव्य है। जिसमें उभयपक्षीय प्रेम का निर्वाह हुआ है। कृष्ण और गोपियाँ दोनों ही एक दूसरे के विरह में समान रूप से व्याकुल हैं।

रत्नाकरजी यद्यपि आधुनिक युग के कवि थे किन्तु विचरण उन्होंने भक्ति-काल में किया। वे गौड़ीय माध्व सम्प्रदाय के अनुयायी थे। मध्वाचार्यजी ईश्वर और जीव की सत्ता अलग-अलग मानते हुये दोनों को चेतन और नित्य स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार ज्ञाता और ज्ञेय का स्वतंत्र अस्तित्व माने बिना ज्ञान सम्भव नहीं है। मध्वाचार्यजी के इन्हीं विचारों का प्रभाव रत्नाकर जी पर स्पष्टतः परिलक्षित होता है। उद्धव शतक में उद्धव ज्ञान-वरिष्ठ

दार्शनिकों के प्रतिनिधि हैं जबकि गोपियाँ ज्ञान-रहित भावना क
प्रतिनिधित्व करती हैं।

ब्रज भूमि में पहुँचकर उद्धव गोपियों को उपदेश देते हुये कहते हैं। तुम श्याम सुन्दर से संयोग चाहती हो तो योग का अनुष्ठान करो। अपनी वृत्तियों को अन्तर्मुखी करके आत्मा को परमात्मा में लीन कर दो। ज्ञान और मोह के कारण ही तुम श्रीकृष्ण से अपना वियोग समझ क्योंकि ब्रह्म सब की आत्मा होने से सर्वात्मा कहलाता है। माया के क कारण तुम्हें अपने में और ब्रह्म में भेद दिखाई देता है—

'देखो भ्रम-पटल उघारि ज्ञान-आँखिन सौं।
कान्ह सब ही में कान्ह ही में सब कोई है॥'

गोपियाँ भक्त हैं। भक्त सदा भगवान की कृपा चाहता रहता है किन्तु अस्तित्व खो कर नहीं। इसलिये गोपियाँ उद्धव से कहती हैं—

मान्यौ हम, कान्ह ब्रह्म एक ही, कह्यौ जो तुम,
तौहूँ हमें भावति न भावना अन्यारी की।
जैहै बनि बिगरि न बारिधता बारिधि की,
बूँदता बिलैहै बूँद विवस बिचारी की॥

हम मान लेते हैं कि कृष्ण और ब्रह्म एक ही हैं जैसा तुम कहते हो। फिर भी हमें अन्यारी की भावना अच्छी नहीं लगती। कारण यह कि समुद्र अगर पानी की एक बूँद मिल जाय तो उससे उसकी समुद्रता में कुछ घट नहीं होगी लेकिन बिचारी बूँद का लघु अस्तित्व ही विलीन हो जायगा।

गोपियों का कृष्ण के प्रति अडिग प्रेम है। उनका दृढ़ विश्वास है श्रीकृष्ण उन्हें अवश्य ही मिलेंगे। इस जन्म में न सही तो दूसरे किसी और ज में। इसलिये वे कहती हैं—

काहू तौ जनम में मिलैंगी श्याम सुन्दर सौं,
याहू आस प्रानायाम साँस में उड़ावै कौन।

अपने आराध्यदेव के मिलने की आशा को वे प्राणायाम की सांस द्वा मिटाना नहीं चाहतीं। अपने अस्तित्व को वे किसी मूल्य पर भी नष्ट नहीं कर चाहतीं। अन्त में वे उद्धव से कहती हैं—

ऊधौ कहें सूधौ सो संदेश कहि दीजौ एक,
जानति अनेक न विवेक ब्रजवारी हैं।

× × × ×

भली हैं बुरी हैं औ सलज निरलज्ज हूँ हैं,
जैसी कहो सोईं पै परिचारिक तुम्हारी हैं॥

हम जैसी भी भली अथवा बुरी हैं आपकी ही दासी हैं।

गोपियों के इन शब्दों में एक भक्त हृदय के मार्मिक दीनता युक्त उद्‌गार भरे हुये हैं जिनमें छल-कपट लेशमात्र भी नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'उद्धव शतक' की सभी सूक्तियाँ भक्ति रस में डूबी हुई हैं। अतः यह निश्चय ही कहा जा सकता है कि 'उद्धव शतक' के रीतिकालीन कलेवर में भक्तिकालीन आत्मा अवतरित हुई है। रत्नाकर जी की इससे अधिक तन्मयतापूर्ण एवं भक्ति-भावना समन्वित दूसरी कृति नहीं मिलती।

प्रश्न २—'रत्नाकर जी के काव्य में कला पक्ष और भाव पक्ष दोनों का पूर्ण समन्वय हुआ है' उदाहरण देते हुये इस कथन को सिद्ध कीजिये।

उत्तर—इस प्रश्न के उत्तर के लिये कवि परिचय के अन्तर्गत दी हुई सामग्री का अनुशीलन कीजिये।

प्रश्न ३—'गंगावतरण' की काव्यगत विशेषताओं पर संक्षेप में विचार कीजिये।

उत्तर—'गंगावतरण' एक प्रबन्ध काव्य है। रत्नाकर जी ने भिन्न-भिन्न ग्रन्थों से कथा लेकर अपने इस ग्रन्थ की रचना की है। अपनी ओर से अधिक कल्पना नहीं की है। फिर भी कवि ने विभिन्न कथाओं को एक दूसरे के साथ गुम्फित कर अपनी प्रबंध-पटुता का अच्छा परिचय दिया है। कथा को रोचक बनाने के लिये वीर, करुण, शृङ्गार आदि रसों की बीच-बीच में योजना की गई है। वात्सल्य और हास्य का भी हलका सा पुट इस ग्रंथ में मिलता है। गोलोक विहारी राधा कृष्ण का वर्णन बड़ा प्रभावशाली है। शंकर जी की भाव-मुद्राओं का भी बहुत सुन्दर चित्रण किया गया है। गंगा की धारा के वर्णन में कवि ने अनेक वस्तूत्प्रेक्षाओं से काम लिया है। यह सब होते हुये कहीं-

कहीं अनावश्यक विस्तार भी हुआ है। नवम सर्ग से त्रयोदश सर्ग तक र पर्वतों से लेकर गंगा सागर तक की यात्रा का वर्णन है। इस में कवि क आदर्श की रक्षा नहीं कर सका है। स्त्रियों के नहाने के विस्तृत वर्णन हैं कुछ तो भक्ति काव्य की संयत मर्यादा से गिर गये हैं। देखिये—

> उचकावति कुचपीन खीन लंकहिं लचकावति।
> अधर दबाइ हलाइ ग्रीव अंगनि मचकावति।
> सस्मित भृकुटि-विलास करति करि त्रिकुट तनेनी।
> गावति मंगल चलो संग सुर-सुन्दर-स्रेनी॥'

अनावश्यक विस्तार होते हुये भी इस ग्रन्थ की कथा में कहीं क उपस्थित नहीं हुआ है। कथा में अप्रतिहत प्रवाह लाने और स्थलों का म चित्रण करने में कवि को अभूतपूर्व सफलता मिली है।

गंगावतरण का भाव पक्ष—ऊपर लिखा जा चुका है कि गंगावतरण कथा को रोचकता प्रदान करने के लिये कवि ने विभिन्न रसों की योजन है। जिनमें वीर, करुण और शृङ्गार रस प्रधान हैं। इन रसों के कुछ उदा यहाँ देना समीचीन होगा।

वीर रस—वीर रस का आधार उत्साह है। वीरों के उदात्त भावों विश्लेषण में रत्नाकरजी कुशल हैं। अन्य ग्रन्थों की भाँति 'गंगावतरण' में वीरोल्लास का चित्र बड़ा ही सजीव तथा प्राणवान हुआ है। अश्वमेध का घोड़ा इन्द्र द्वारा अपहृत हो जाने पर अज्ञात शत्रु के प्रति रण-दुर्मद सैनि का यह भयंकर रोष द्रष्टव्य है :—

> "कढ़ी परति करवाल कोष सौं चमकि-चमकि कै।
> निकसे आवत बान तून सौं तमकि-तमकि कै॥
> उठि-उठि कर रहि जात कसकि तिनके बाहन कौं।
> पै न लगति अरि-खोज ओज सौं उत्साहन कौं॥"

करुण रस—करुण रस में शोक का अत्यन्त आवेग होता है 'गंगावतरण' में करुण रस के कुछ मर्मस्पर्शी प्रसङ्ग विद्यमान हैं। अंशुमा ६० हजार सगर पुत्रों की मृत्यु का दारुण समाचार लेकर लौटता है। जिसे

सुनकर अश्वमेध का रंग बदल जाता है। जहाँ अभी मंत्रोच्चारण हो रहा था वहीं अब करुण क्रंदन होने लगता है—

> लगे सकल सिर धुनन काढ़ करुना को मार्यौ।
> मनु बनाइ बहु वपुष बरुन तिहि मंडप नाच्यौ॥
> लागीं खान पछाड़ धाड़ मारन सब रानी।
> मानहु माजा मज्झि तलफि सफरी अकुलानी॥
> भयौ भूप जड़-रूप अंग के रंग सिराये।
> बज्राघात सहस्र साठ संगहि सिर आये॥
> कढ़्यौ कंठ नहिं बैन न नैननि आँसु प्रकास्यौ।
> आनन भाव-विहीन गाँव ऊजड़ लौं भास्यौ॥

शोक के आवेग का चरम बिन्दु वहाँ होता है जहाँ शोकाभिभूत व्यक्ति रोना भूलकर जड़वत हो जाता है। शोकाकुल राजा सगर की यहाँ यही दशा हुई है।

शृङ्गार रस—शृङ्गार रस का स्थायी भाव रति है। गंगावतरण में कई स्थल ऐसे हैं जहाँ कवि ने संयोग शृङ्गार का बड़ा ही सुन्दर तथा आकर्षक वर्णन किया है। ब्रह्मलोक में गंगा बड़ी ओजपूर्ण मुद्रा में उतरती हुई आती है और भगवान शङ्कर के सम्मुख आते ही उन पर मोहित हो जाती है। प्रथम दर्शन में प्रेमोद्रेक का यह वर्णन कितना रोचक बन पड़ा है—

> विपुल बेग बल विक्रम कैं ओजनि उमगाई।
> हरहराति हरषाति संभु सनमुख जब आई॥
> भई थकित छवि छकित हेरि हर-रूप मनोहर।
> है आनहि के प्रान रहे तन धरे धरोहर॥
> भयौ कोप कौ लोप चोप औरै उमगाई।
> चित चिकनाई चढ़ी कढ़ी सब रोष रुखाई॥

और अंत में—

> सकुचित ऐंचति अंग गंग सुख संग लजानी।
> जटा जूट-हिम कूट सघन बन सिमिटि समानी॥

इन पंक्तियों में शृङ्गार का वर्णन कितना स्वाभाविक एवं कलात्मक हुआ है। कवि ने कुलवती सलज्ज नववधू का यथार्थ चित्र अंकित कर दिया है। इन रसों के अतिरिक्त कहीं-कहीं रौद्र, भयानक और हास्य रस की योज
इस ग्रंथ में हुई है।

रौद्र रस—रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। शत्रु एवं उसके पक्ष
इसके आलंबन विभाव हैं। शत्रु द्वारा प्रयुक्त कटुवाक्य उद्दीपन विभाव, भ
होठों और दांतों का चबाना, लाल-लाल नेत्र आदि अनुभाव एवं उग्रता,
आदि इसके संचारी भाव हैं। गंगावतरण में गंगा के ब्रह्मलोक से
अवतरित होते समय शिव का रौद्र रूप निम्न छन्दों में द्रष्टव्य है—

सिव सुजान यह जानि तानि भौंहनि मन माषे।
बाढ़ी-गंग-उमंग-भंग पर उर अभिलाषे॥
भये सँभरि सन्नद्ध भंग कैं रंग रंगाये।
अति दृढ़ दीरघ सृंग देखि तापर चलि आये॥
बर बाहनि कर फेरि चापि चटकाइ आंगुरिनि।
बच्छस्थल उमगाइ ग्रीव उचकाइ नायमिनि॥
तमकि ताकि भुज दण्ड चण्ड फरकत चित-चौंपे।
महि दबाइ दुहुँ पाँय कछुक अंतर सौं रोपे॥
जुगल कंध बल-गंध हुमकि हुमगाइ उचाए।
दोउ भुजदंड उदंड तोलि ताने तमकाए॥
कर जमाइ करि नैन नभ ओर लगाए।
गंगागम की बाट लेन जोहन हर टाए॥

भयानक रस—भयानक रस का स्थायी भाव भय है। विपत्ति की आशंका
से भय का उद्रेक होता है। भयानक रस के अनेक सुन्दर स्थल गंगावतरण में
विद्यमान हैं। गंगा ब्रह्मा के कमण्डलु से अभी निकली भी नहीं है, किन्तु गंगा
की धमक से ही अखिल ब्रह्माण्ड में खलबली मच जाती है—

इन सुरसरि की धाक धमकि त्रिभुवन भय-पागे।
धकल सुरपुर विकल विलोकन आतुर लागे॥

दहलि दसौं दिगपाल बिकल-चित इत उत धावत।
दिग्गज दिय दतनि दबोचि दृग ममरि भ्रमावत॥

आकाश मार्ग से उतरते समय प्रबल वेग से प्रवाहित होती हुई गंगा की अखण्ड धारा से विष्णु और महेश के वाहन भड़क जाते हैं और प्रचण्ड ध्वनि-प्रतिध्वनि से दिग्गज तक विचलित हो जाते हैं। निम्न छंदों में कवि ने प्रलयकाल जैसा दृश्य उपस्थित कर दिया है—

निकसि कमंडल तैं उमडि नभ-मंडल-खंडति।
धाई धार अपार बेग सौं बायु बिहंडति॥
भयौ घोर अति शब्द धमक सौं त्रिभुवन तर्जे।
महामेघ मिलि मनहु एक इकहि सब गर्जे॥
भरके भानु तुरग चमकि चलि मग सौं सरके।
हरके बाहन रुकत नैंकु नहिं विधि हरि हर के॥
दिग्गज करि चिक्कार नैन फेरत भय-थर के।
धुनि-प्रतिधुनि सौं धमकि धराधर के उर धर के॥

हास्य रस—हास्य रस का स्थायी भाव हास है। विकृत चेष्टा, वाणी, आकृति आदि से हास्य रस का उद्रेक होता है। गंगावतरण में ब्रह्मा से वरदान मांगते हुये राजा भगीरथ के कथन में हास्य रस से परिपुष्ट विनोदात्मक चमत्कार निम्न छन्द में देखिए :—

अति उदार करतार जदपि तुम सरबस दानी।
हम लघु जाचक चहत एक चिल्लू भर पानी॥

ब्रह्माजी 'लघु जाचक' से 'चुल्लू भर पानी' की 'लघु याचना' को सुनकर मुस्कराने लगते हैं—

यह सुनि मृदु मुसकाइ चतुर-चतुरानन भाख्यौ।
धन्य-धन्य महिपाल मही-हित पर चित राख्यौ॥

ब्रह्माजी का यह शालीनता पूर्ण हास्य शिष्ट और बड़े लोगों में ही दिखाई देता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गंगावतरण का भाव पक्ष अत्यन्त समुन्नत एवं

उच्चकोटि का है। पाठक के हृदय को रस से आप्लावित करने में वह पूर्ण समर्थ है।

गंगावतरण का कलापक्ष—भाव विधान के समान गंगावतरण का कला-विधान भी श्रेष्ठ है। कवि ने अलंकारों की योजना करके गंगावतरण में कई हृदय-द्रावक दृश्य उपस्थित किये हैं। अंशुमान ६० हजार सगर पुत्रों के भस्म हो जाने के समाचार को लेकर लौटता है। इसी प्रसंग को लेकर कवि ने साग रूपक का प्रयोग किया है। जहाँ यज्ञ हो रहा था, वहीं अब शोक-समुद्र आलोड़ित हो उठा है। वेदना की तीक्ष्ण लहरों से धैर्य रूपी मर्यादा नष्ट हो रही है। यज्ञ की अग्नि ज्वाला वड़वाग्नि बन गई है। 'पानी फिर जाना' जैसे चलते हुये मुहावरे के सफल प्रयोग से साग रूपक और भी निखर गया है—

> उमड़्यो सोक-समुद्र भई विप्लुत मख-साला।
> बड़वागिनि सी लगन लगी जज्ञागिनि-ज्वाला॥
> गयौ तुरत फिरि सब उछाह आनन्द पर पानी।
> बढ़ी पीर की लहर धरि-मरजाद नसानी॥

अलंकार-कौशल से कवि ने वर्णित प्रसंग का सजीव चित्र उपस्थित कर दिया है।

सन्देह अलंकार के प्रयोग भी गंगावतरण में बड़े सफल बन पड़े हैं। इस अलंकार में उपमेय और उपमान में सन्देह की उद्भावना की जाती है साथ ही उपमेय तथा उपमान के पारस्परिक साम्य का भी पूर्ण उल्लेख होता है। गंगावतरण की निम्न पंक्तियाँ देखिये—

> कै निज नायक बध्यो बिलोकत व्याल पाप तैं।
> तारनि की सेना उदंड उतरति अकास तैं॥
> कै सुर-सुमन-समूह आनि सुर-जूह जुहारत।
> हर-हर करि हर-सीस एक संगहि सब डारत॥

कवि ने यहाँ आकाश से गिरती हुई गंगा की धारा का चित्र सा खींच दिया है। आकाश से उतरती हुई तारों की सेना और गङ्गा की इस धार में कैसा साम्य है। इसी प्रकार आकाश से होने वाली फूलों की वर्षा और पृथ्वी

पर उतरती हुई गङ्गा की धारा में भी चमत्कार पूर्ण समानता है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत की सुन्दर समानता सन्देह अलंकार के द्वारा आकर्षक बनी है।

उत्प्रेक्षा के प्रयोग से भी कवि को आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई है। आकाश से गङ्गा के अवतरित होते समय समस्त ब्रह्माण्ड में घोर ध्वनि व्याप्त हो गई, उसका वर्णन कवि ने निम्न पंक्तियों में किया है:—

> निकसि कमंडल तैं उमंडि नभ-मंडल-खंडित।
> धाई धार अपार वेग सौं वायु विहंडति॥
> भयौ घोर अति सब्द धमक सौं त्रिभुवन तर्जे।
> महा मेघ मिलि मनहु एक संगहि सब गर्जे॥

अन्तिम पंक्ति में प्रयुक्त उत्प्रेक्षा के कारण आकाश से घोर शब्द करते हुये उतरती हुई गङ्गा का वर्णन साकार हो जाता है। 'महा मेघ मिलि मनहु एक संगहि सब गर्जे' इस पंक्ति से तो ऐसा प्रतीत होता है मानो गङ्गा की उस भीषण ध्वनि को हम साक्षात अपने कानों सुन रहे हों।

गंगावतरण की निम्नांकित पंक्तियों में अनुप्रास की छटा के साथ अर्थ-व्यंजन का मनोरम चमत्कार भी देखते ही बनता है:—

> छोभ-छलक ह्वै गई प्रेम की पुलक अंग मैं।
> थहरनि के ढरि ढंग परे उछरति तरंग मैं॥
> भयौ वेग उद्वेग पैग छाती पर धर की।
> हर हरान धुनि बिघटि सुरट उघटी हर-हर की॥

यहाँ हरहरान शब्द से गंगा के तीव्र प्रवाह की ध्वनि साकार हो उठती है, और हर हर जैसे शब्दों से उसके धीरे-धीरे प्रवाहित होने की ध्वनि भी कानों में गूँजने लगती है।

इस प्रकार गंगावतरण का अलंकार विधान अत्यन्त सफल और समृद्ध-शाली है।

गंगावतरण की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। लोकोक्तियों और चलते हुये मुहावरों के प्रयोग से भाषा अधिक सशक्त बन गई है। उदाहरण के लिये निम्न छन्द देखिये जिसमें गरुड द्वारा अंशुमान को सगर के साठ हजार पुत्रों के

भस्मीभूत होने का समाचार मिलने पर वह इस दुःखद समाचार से व्याकुल हो कह उठता है:—

> हाय तात यह भयो घात बिन बात बिहायो।
> हाथ करत कर जरयो परयो बिधि बाम हमारो॥
> आये बाजी लैन बेंचि बाजी इमि सोवत।
> उठत क्यों न पितु लखत बाट उत इत सिसु रोवत॥

उपर्युक्त छन्द में होम करते हाथ जलना कहावत का विदग्ध प्रयोग किया गया है जो सार्थक है। राजा सगर-अश्वमेघ यज्ञ कर रहे थे। इस यज्ञ में हाथ जलने की तो बात ही क्या है, उनके ६० हजार पुत्र तक भस्मीभूत हो गये थे। इसी प्रकार 'घोड़ा बेचकर सो रहना' कहावत का भी सफल प्रयोग हुआ है। राजा सगर के पुत्र घोड़ा ढूँढने आये थे और यहाँ चिर निद्रा में सो गये। 'आये बाजी लेन बेंचि बाजी इमि सोवत' इस एक पंक्ति से ही ६० हजार पुत्रों की दारुण दशा का चित्र सा खिंच जाता है। इनके अतिरिक्त 'बिधिबाम' और 'बिन बात' जैसे वाक्यांशों के प्रयोग भी उक्ति वैचित्र्य में सहायक हो रहे हैं।

संस्कृत-मिश्रित भाषा के भी उदाहरण गंगावतरण में प्राप्त होते हैं। किन्तु ऐसे स्थलों पर भी ब्रजभाषा की स्वाभाविक सुकुमारता नष्ट नहीं होने पाई और न काव्य की मुख्य विशेषता प्रसादगुण को ही ठेस पहुँची है। संक्षेप में रत्नाकर जी की भाषा में प्रसाद, माधुर्य और ओज तीनों ही गुण विद्यमान हैं।

गङ्गावतरण की रचना रोला छन्द में हुई है। इस काव्य के मंगलाचरण में तीन छप्पय, सर्गान्त में एक उल्लाला, ग्रन्थ के अन्त में एक दोहा तथा शेष समस्त काव्य रोला छन्द में रचा गया है। इस प्रकार यह काव्य तीन छप्पय, एक दोहा, तेरह उल्लाला और पाँच सौ छप्पन रोला छन्दों में समाप्त हुआ है। अतः काव्य के दोनों ही पक्षों की दृष्टि से गङ्गावतरण रत्नाकर जी की एक सफल एवं श्रेष्ठ रचना ठहरती है।

प्रश्न ४—रत्नाकर जी का संक्षिप्त परिचय दीजिए तथा उनके द्वारा की गई साहित्य सेवाओं पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर—कवि के जीवन परिचय में इस प्रश्न का उत्तर निहित है, अतः उसका अनुशीलन कीजिये।

प्रश्न ५—"रत्नाकर जी ने "उद्धवशतक" में प्रेम और भक्ति अथवा सगुण मार्ग की ज्ञान और योग अथवा निर्गुण मार्ग पर विजय दिखलाई है" इस कथन की युक्तियुक्त विवेचना कीजिए।

उत्तर—भ्रमरगीत का सुन्दर प्रसंग श्रीमद्भागवत की उपज है। उसमें गोपियों के द्वारा प्रेम और भक्ति की ज्ञान और योग के सम्मुख विशेष महत्त्व दिखाई गई है, यद्यपि गोपियाँ उद्धव के ज्ञानोपदेश को बिना भला बुरा कहे स्वीकार कर लेती हैं। किन्तु हिन्दी साहित्य में जब इस प्रसंग को सबसे पहले सूरदास जी ने अपनाया तो तत्कालीन परिस्थितियों के कारण उन्होंने अपने भ्रमरगीत में गोपियों द्वारा उद्धव को खूब खरी खोटी सुनवाई और प्रेम तथा भक्ति अथवा सगुणमार्ग की ज्ञान और योग अथवा निर्गुण मार्ग पर विजय दिखलाई। तबसे आज तक जितनी भी रचनाएँ इस प्रसंग को लेकर हुईं, सबने किसी न किसी रूप में सगुण का समर्थन और निर्गुण का खण्डन किया।

आधुनिक युग में रत्नाकर जी ने भी इस प्रसंग पर 'उद्धवशतक' हिन्दी जगत को भेंट किया। इसमें कवि ने सगुण निर्गुण के विवाद को मौलिक ढंग से सुलझाया है। पहले उद्धव कृष्ण को ज्ञान का उपदेश देते हुये कहते हैं कि सारे संसार में एक ब्रह्म की सत्ता है और विचार करके देखो तो ब्रह्म ही सत्य है और जगत मिथ्या है, कृष्ण इसके उत्तर में कहते हैं कि हे उद्धव! तुम एक बार गोकुल होकर लौट आओ और तब यही ज्ञान हमें सिखलाओ तो हम आपकी शिक्षा मान लेंगे, इस पर उद्धव गोकुल को जाते हैं। लेकिन कृष्ण की विरह व्यथा को देखकर उनका समस्त ज्ञान नष्ट हो जाता है। उनकी ज्ञान गठरी की गांठ न जाने कब मार्ग में ही खुल जाती है। गोकुल की सीमा में पहुँचते ही उनका ज्ञान गर्व नष्ट हो जाता है। नेत्रों से अश्रु धारा बहने लगती है। शरीर पुलकित हो उठता है। गोपियों की दशा देखकर तो उद्धव चकित रह जाते हैं:—

जोग को रमावै औ समाधि कौ जगावै इहाँ,
सुख दुख साधन सों निपट निबेरी हैं।
× × × ×
चेरी हैं न ऊधो काहू ब्रह्म के बबा की हम·
सूधौ कहै देत एक कान्ह की कमेरी हैं॥

वे कृष्ण के सगुण रूप पर अपने को न्यौछावर कर चुकी हैं। उन्हें दृढ़ विश्वास है कि श्रीकृष्ण उन्हें अवश्य मिलेंगे इस जन्म में न सही तो किसी अन्य जन्म में अतः घबरा कर वे अपने मार्ग से विचलित नहीं हो सकतीं।

काहू तौ जनम में मिलैंगो स्याम सुन्दर सौ,
याहू आस प्रणायाम साँस में उड़ावै कोन।

उद्धव ब्रह्म को विश्वव्यापी, अरूप, अनाम आदि बताते हुये योग के द्वारा त्रिकुटी में रखकर उसे अन्तर के नेत्रों से देखने को कहते हैं। गोपियाँ उद्धव के इस कथन को आत्म विरुद्ध सिद्ध करती हुई कहती हैं—

ऐते बड़े विश्व माहि हेर हूँ न पैये जाहि,
ताहि त्रिकुटी में नैन मूँदि लखिबौ कहाँ।

बात ठीक भी है। आँखें खोलकर ही सभी वस्तुएँ देखी जाती हैं लेकिन उद्धव यहाँ आँखें बन्द करके देखने को कहते हैं। बिचारी सीधी-साधी अपढ़ गोपियाँ उद्धव की इन गूढ़ोक्तियों को कैसे समझ सकती हैं।

उद्धव योग की क्रियाओं द्वारा आत्मा को परमात्मा में लीन करने का उपदेश देते हैं किन्तु गोपियाँ इसका विरोध करती हुई कहती हैं कि—

'मान्यौ हम, कान्ह ब्रह्म एक ही कह्यो जो तुम,
तोहूँ हमें भावति न भावना अन्यारी की।
जैहै बनि बिगरि न बारिधता बारिध की,
बूँदता बिलैहै बूँद बिबस बिचारी की॥

ब्रह्म में लीन हो कर गोपियों को मिलेगा क्या? क्योंकि फिर कृष्ण को पाने वाला ही नहीं रहेगा। भक्ति सिद्धान्त के अनुसार भक्त भगवान में विलीन होना नहीं चाहता अपितु वह अपने इष्टदेव के साहचर्य को ही सर्वश्रेष्ठ समझता है। यहाँ गोपियों ने इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

प्राणायाम के विरोध में गोपियों का यह कथन कितना स्वाभाविक है—

"एक बार लैहैं मरि मींच की कृपा सौं हम,
रोकि रोकि साँस बिन मींचु मरिबौ कहा।

जिस हृदय में कृष्ण को स्थान देदिया है उसमें गोपियाँ ब्रह्म को कैसे स्थान दे सकती हैं। यदि वे ऐसा करेंगी तो कृष्ण के साथ विश्वासघात होगा। अतः वे कहती हैं—

नैननि के नीर औ उसीर पुलकावलि सौं,
जाहि करि सीरो सीरी बातहिं बिलासैं हम।
× × × ×
सोई मन-मंदिर तपावन के काज आज,
रावरे कहे तैं ब्रह्म-जोति लै प्रकासैं हम।
नंद के कुमार सुकुमार कौं बसाइ यामैं,
ऊधौ अब हाइ कै बिसासी उदवासैं हम॥

गोपियाँ उद्धव से कहती है कि कृष्ण को यदि आप हमारी आँखों से देख लेते तो फिर इस प्रकार बातें नहीं करते—

ऊधौ ब्रह्म ज्ञान को बखान करते ना नैंकु,
देख लेते कान्ह जौ हमारी अँखियान तैं।

अन्त में उद्धव से कह देती हैं कि—

(१) यह वह सिंधु नाहिं सोखि जो अगस्त लियौ,
ऊधौ यह गोपिनि के प्रेम को प्रवाह है।
(२) यह गढ़ प्रेमाचल दृढ़ या धारिनि कौ,
जाकें भार भार उनहूँ कौ सकुचायौ है।
जानै कहा जानि कै अजान ह्वै सुजान कान्ह,
ताहि तुम्हैं ध्यान सौं उठावन पठायौ है॥

गोपियों के प्रेमादर्श को देख कर उद्धव नतमस्तक हो जाते हैं। उनका ज्ञानगर्व समूल नष्ट हो जाता है और वे लज्जित होकर मथुरा लौट जाते हैं—

आये लौटि लज्जित नवाये नैन ऊधौ अब,
सब सुख-साधन को सूखो सो ज्ञान लै।

कहै रत्नाकर गंवाये गुन गौरव औ,
गरब-गठी कौ परि पूरन पतन लै।।
छाये नैन नीर पीर-कसक कमाये उर,
दीनता अधीरता के भार सौं नतन लै।
प्रेम-रस रुचिर विराग-तूमड़ी मैं पूरि,
ज्ञान-गूदड़ी मैं अनुराग सौ रतन लै।।

इस प्रकार ज्ञानवृद्ध उद्धव प्रेम विह्वल हो कृष्ण के समीप आकर कहते हैं—

हौं तो चित चाव जौ न रावरे चितावन की,
तजि ब्रज गाव इतै पाँव धरते नहीं।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रत्नाकर जी ने अपने 'उद्धव शतक' में ज्ञान और योग पर भक्ति और प्रेम की विजय दिखाई है। उनके इन विचारों से विदित होता है कि अद्वैतवाद के शुष्क और नीरस विचारों की अपेक्षा गम्भीर भक्ति के रसोन्मित तत्वों की ओर उनकी अधिक आस्था थी।

प्रश्न ६—'रत्नाकरजी का गोपी विरह वर्णन अत्यन्त मार्मिक एवं हृदय-स्पर्शी है।' उद्धरण प्रस्तुत करते हुये इस कथन की समीक्षा कीजिये।

उत्तरः—मुक्तक रचनाओं की अपेक्षा 'उद्धव-शतक' में रत्नाकरजी का विरह-वर्णन अधिक मार्मिक एवं हृदय-स्पर्शी है। मुक्तक काव्य में कथा-प्रवाह न होने से विरह की विभिन्न दशाओं के व्यक्तीकरण की उतनी सुविधा नहीं होती जितनी प्रबन्धात्मक प्रेम-कथाओं में होती है। 'उद्धव-शतक में कथा-प्रवाह उपेत होने के कारण ही गोपी-विरह वर्णन में 'रत्नाकरजी' को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। उनका गोपी-विरह पाठकों के हृदय पर एक ऐसी छाप छोड़ देता है जो चिर स्थायी रहती है। गोपियाँ प्रेम की साकार मूर्तियाँ हैं। उनकी मूक-वेदना का कवि ने जैसा सजीव वर्णन किया है वैसा सूरदासजी एवं घनानन्द जैसे सफल कवियों को छोड़कर अन्यत्र दुर्लभ है। कृष्ण के जिस प्रेम में मीरा जन्म भर रोती रही उसी में 'उद्धवशतक' की गोपियाँ भी व्यथित दिखाई

देती हैं। उनकी व्यथा लोक-सामान्य भाव-भूमि पर स्थित होने के कारण पाठकों को तन्मय करने की अद्भुत क्षमता रखती है।

श्रीकृष्ण के परम सखा उद्धव जब उनका संदेश लेकर गोकुल पहुँचते हैं तब गोपियों के झुण्ड के झुण्ड चारों ओर से आकर उन्हें घेर लेते हैं। उद्धव की मुख मुद्रा देखकर गोपियों को शंका होती है कि कृष्ण ने जो सन्देश भेजा है वह कहीं हमारे प्रतिकूल तो नहीं है। यही शंका उनके हृदय का बारम्बार मंथन कर रही है। गोपियों की इस दशा का चित्रण कवि ने निम्न पंक्तियों में किया है जो कितना भावपूर्ण एवं सजीव है :—

> "लेखि निज-भाग-लेख रेख तिन आनन्द की,
> जानन की ताहि आतुरी सौं मन म्वै रहीं।
> आँखि रोकि साँस रोकि पूछन-हुलास रोकि,
> मूरति निरास की सी आस-भरी ज्वै रहीं॥

उद्धव कृष्ण का प्रेम-पत्र लाये हैं। प्रिय के वियोग में उसका प्रेम-प कितना आकर्षक होता है इसका अनुभव तो भुक्त-भोगी को ही हो सकता है इस प्रेम पत्र की गोपियाँ कितने दिन से प्रतीक्षा कर रही थीं। आज उस प को उद्धव लाये हैं अतः पत्र में क्या लिखा है यह जानने की उत्सुकता गोपि के हृदय में होना स्वाभाविक ही है। गोपियों की हर्ष समन्वित इस उत्सुकता अभिव्यक्ति निम्न पंक्तियों में देखिये :—

> "उझकि-उझकि पद-कंजनि के पंजनि पै,
> पेखि-पेखि पाती छाती छोहनि छ्वै लगीं।
> हमको लिख्यौ है कहा, हमको लिख्यौ है कहा,
> हमको लिख्यौ है कहा, कहन सबै लगीं॥

उद्धव उन्हें धीरे-धीरे समझाने का प्रयास करते हैं कि श्रीकृष्ण सबके हृदय में अन्तर्भूत हैं और सब श्रीकृष्ण में; फिर मिलन और विछोह का प्रश्न ही कहाँ उठता है। यह सब भेद-प्रभेद तो माया के प्रपंच के कारण ही दिखाई देता है। उद्धव की ये अटपटी बातें गोपियों की समझ में नहीं आतीं। उनके हृदय में तो श्रीकृष्ण के प्रति अपार प्रेम है और इस प्रेम के लिये उन्होंने अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया है। उनका सरल हृदय तो प्रियतम का प्रेमपूर्ण

संदेश सुनने के लिये उत्सुक था किन्तु उद्धव की बातें सुनकर तो उनकी सारी आशाओं और उमंगों पर पानी फिर गया। उनकी विह्वल दशा का यह चित्रण कितना मार्मिक है:—

'सुनि-सुनि ऊधव की अकह कहानी कान,
कोऊ थहरानी कोऊ थानहि थिरानी हैं।
कहै रतनाकर रिसानी, बर रानी कोऊ,
कोऊ बिलखानी, बिकलानी, बिथकानी हैं॥
कोऊ सेद-सानी, काऊ भरि दृग-पानी रहीं,
कोऊ घूमि-घूमि परीं भूमि मुरझानी हैं।
कोऊ स्याम-स्याम कै बहकि बिललानी कोऊ,
कोमल करे जौ थामि सहमि सुखानी हैं॥

विरह विधुरा भोली गोपियों के हृदय में तो प्रिय के सन्देश के नाम से ही अनेक अभिलाषायें करवटें बदल रही थीं उन्हें ज्ञान गर्वीले उद्धव क्या समझा सकते थे। उनके सिद्धान्त वाक्यों को बेचारी गोपियाँ कैसे हृदयङ्गम कर सकती थीं। प्रियतम कृष्ण के जिस सन्देश को सुनने के लिये वे लालायित थीं उसके बिलकुल विपरीत बातें उन्हें सुनने को मिलीं। अतः आहत एवं खिन्न होकर उन्होंने कहा—

"करत उपाय न सुभाय लखि नारिनि कौ
भाय क्यों अनारिनि कौ भरत कन्हाई है।
ह्याँ तौ विषम ज्वर-वियोग की चढ़ाई यह
पाती कौन रोग की पठावत दवाई है॥

गोपियों को तो श्यामसुन्दर के दर्शन चाहिये थे उसके स्थान पर उद्धव के हाथ ये क्या अटपटा सन्देश कृष्ण ने भेज दिया। रोग कुछ और उसका उपचार कुछ। महाकवि बिहारी के इस दोहे में भी यही भाव सन्निहित है:—

"यह विनसत नगु राखि कै, जगत बड़ो जस लेहु।
जरी विषम जुर ज्याइयै, आइ सुदरसन देहु॥"

भोली गोपियों को विश्वास नहीं होता कि यह सन्देश उनके प्रियतम कृष्ण का है। वे तो यह समझती हैं कि कृष्ण ने जो कुछ उद्धव से कहा है उसे तो उद्धव भूल गये हैं और व्यर्थ में ही बहक कर कभी जोग-जोग कह उठते हैं

और कभी व्यंग मय बातें करने लग जाती हैं। गोपियों को उद्धव के ब्रज से महान् चिढ़ हो गई है। वे उद्धव से स्पष्ट रूप से कह देती हैं कि उनके उपदेश का गोपियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। वे तो श्यामसुन्दर की अनन्य उपासिका हैं। यदि उद्धव को अपने ज्ञानोपदेश करने की हौंस ही है तो वे अपने ज्ञान रूपी सूर्य का प्रकाश पहाड़ की चोटियों पर जाकर करें। ब्रज में उनकी यह कला तनिक भी फलीभूत नहीं होगी। गोपियों के ये भाव निम्न छन्द में दृष्टव्य हैं :—

> "कीजै ज्ञान-भानु को प्रकास गिरि-शृङ्गनि पै।
> ब्रज में तिहारी कला नेकु चलि है नहीं।
> कहै रत्नाकर न प्रेम-तरु पैहै सूखि।
> याकी डार-पात तृण-तूल घटि है नहीं।
> लौटि-पौटि बात को बवंडर बनावत क्यों।
> हिय तें हमारे घन-स्याम हटिहैं नहीं॥

सूरदासजी के निम्न पद में भी ये ही भाव व्यक्त हुये हैं :—

> गोकुल सबै गोपाल उपासी।
> जोग अंग साधत जे ऊधो ते बसत ईशपुर कासी॥
> यद्यपि हरि तजि हम अनाथ करि, तदपि रहत चरनन रस रासी।
> × × × ×
> सूरदास ऐसी को बिरहिन मांगति मुक्ति तजे गुन रासी॥

गोपियों के अनन्य प्रेम का भव्यतर प्रमाण और क्या हो सकता है। उद्धव की अकह कहानी सुन-सुन कर स्त्री सुलभ ईर्ष्या के कारण कभी-कभी गोपियाँ यह भी सोचने लगती हैं कि कहीं यह सब करतूत कुब्जा की न हो। संभवतः उद्धव को कुब्जा ने ही सिखा पढ़ाकर भेजा है। उनके प्रियतम श्यामसुन्दर कभी भी ऐसा नहीं कह सकते अतः वे उद्धव से कहती हैं :—

> "सुघर सलोने स्याम सुन्दर सुजान कान्ह
> करुना-निधान के बसीठ बनि आये हो।
> प्रेम-प्रनधारी गिरिधारी को सनेसो नाहिं
> होत है अँदेसो झूठ बोलत बनाये हो।

ज्ञान-गुन-गौरव-गुमान-भरे फूले फिरो
बंचक के काज पै न रंचक बराये हो।
रसिक-सिरोमनि को नाम बदनाम करो
मेरी जान ऊधौ कूर-कुबरी पठाये हो ॥"

इतने पर भी गोपियों को संतोष नहीं होता तो वे कुब्जा और कृष्ण के साथ उद्धव को भी लपेट लेती हैं और उनसे कहती हैं :—

"वे तो भये जोगी जाइ पाइ कुबरी को जोग।
आप कहें उनके गुरू हैं किधौं चेला हैं ॥"

गोपियों को उद्धव की बुद्धि पर बड़ा तरस आता है। वे सोचती हैं कि उद्धव अनन्त रूप की राशि श्रीकृष्ण के अभिन्न मित्र होते हुये भी ब्रह्म के चक्कर में कैसे पड़ गये। उन्हें विश्वास हो जाता है कि अभी तक उद्धव ने कृष्ण के रूप को देखा नहीं है। इसीलिये वे ब्रह्म-ज्ञान का बखान करते रहते हैं। यदि कहीं वे कन्हैया का रूप हमारे नेत्रों से देख लेते तो फिर ऐसा कभी नहीं कहते। गोपियों के इसी भाव को निम्न छन्द में देखिये :—

"टाँग जात्यो टरकि परकि उर सोग जात्यो।
जोग जात्यो सरकि सकंप कखियानि तैं ॥

× × × ×

रहते अदेख नाहिं वेष वह देखन हूँ
देखत हमारी जान मोर पंखियानि तैं।
ऊधौ ब्रह्म-ज्ञान को बखान करते ना नैंकु।
देख लेते कान्ह जो हमारी अँखियानि तैं ॥

यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि प्रेमी अपने प्रिय को जिन आँखों से देखता है उनसे सामान्य व्यक्ति उसे नहीं देख पाते।

उद्धव गोपियों की इन उक्तियों से नत-मस्तक हो जाते हैं उनका अनन्त ज्ञान-गर्व दूर हो जाता है और वे प्रेम में विभोर हो जाते हैं। जब वे गोपियों से बिदा लेकर कृष्ण के पास जाने लगते हैं तो गोपियाँ उनसे कहती हैं—

"नन्द जसुदा औ गाय-गोप गोपिका की कछू
बात बृषभान भौन हूँ की जनि कीजियो।
कहै रतनाकर कहत सब हा हा खाइ
ह्याँ के परपंचनि सौं रंच न पसीजियो॥
आँसु भरि ऐहैं औ उदास मुख ह्वै हैं हाय
ब्रज-दुख त्रास को न तातैं साँस लीजियो।
नाम को बताइ औ जताइ ग्राम ऊधौ बस
स्याम सों हमारी राम-राम कहि दीजियो॥

कितनी उदात्त भावना है गोपियों की। वे प्रेम में त्याग के महत्व को भली भाँति जानती हैं इसीलिये वे अपनी विरह-व्यथा का समाचार भी कृष्ण के पास नहीं भेजना चाहतीं। वे अपने प्रिय को किसी प्रकार भी उदास नहीं देखना चाहतीं। अंत में वे उद्धव को अपना सन्देश इन शब्दों में देती हैं :—

ऊधौ यहै सूधौ सो संदेस कहि दीजो एक,
जानति अनेक न विवेक ब्रजनारी हैं।
कहै रत्नाकर असीम रावरी तो क्षमा,
क्षमता कहाँ लौं अपराध की हमारी हैं॥
दीजै और ताजन सबै जो मन भावै पर,
कीजै न दरस-रस वंचित बिचारी हैं।
भली हैं बुरी हैं जो सलज्ज निरलज्ज हू हैं,
जो कहो सो हैं, पै परिचारिका तिहारी हैं॥

गोपियों के अडिग प्रेम का ऐसा भवन खड़ा किया है रत्नाकरजी ने जो अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। गोपी-विरह में रत्नाकरजी की रस-सिक्त सूक्तियाँ बड़ी ही हृदय स्पर्शी हैं। विरह के आवेग पूर्ण भावों से ओत-प्रोत होने के कारण वे बरबस ही पाठक के हृदय को आकृष्ट कर लेती हैं और उसमें मधुर स्पन्दन उत्पन्न कर देती हैं।

जयशंकर प्रसाद

परिचय—महाकवि श्री जयशंकर प्रसाद का जन्म माघ शुक्ला दशमी संवत् १९४६ वि० (सन् १८८९ ई०) में काशी के एक सम्पन्न वैश्य परिवार में हुआ था। उनके पितामह का नाम श्री शिवरत्न साहु और पिता का नाम श्री देवी प्रसाद था। श्री शिवरत्न साहु बड़े दानी और दयावान थे। प्रातः काल गंगा-स्नान से लौटते समय वह अपना कम्बल और लोटा तक भिखारियों को दे डालते थे। काशी में वे सुंघनी साहु के नाम से विख्यात थे। इसी से प्रसादजी को भी लोग सुंघनी साहु कहा करते थे।

प्रसाद जी का बचपन बड़े लाड़-प्यार में बीता। इनके माता पिता का देहान्त इनकी अल्पायु में ही हो गया। पिता की मृत्यु के समय आप काशी के क्वीन्स कालेज में सातवीं कक्षा में पढ़ते थे। परिस्थितियों से विवश होकर इन्हें स्कूल की पढ़ाई छोड़नी पड़ी। उनके बड़े भाई शम्भूरत्न ने घर पर ही उनकी पढ़ाई का प्रबन्ध कर दिया।

पं० दीनबन्धु ब्रह्मचारी प्रसाद जी को वेद और उपनिषद् पढ़ाते थे। उनको अंग्रेजी शिक्षा का भी उचित प्रबन्ध था। शिक्षा के साथ-साथ प्रसाद जी हिन्दी साहित्य का अध्ययन भी करते जाते थे। धीरे-धीरे वे कविताएँ भी लिखने लगे। उनकी कविताओं की प्रशंसा सुन कर उनके भाई ने उन्हें कविता करने की पूरी स्वतन्त्रता देदी। थोड़े दिनों बाद उनके बड़े भाई भी इस असार संसार से चल बसे।

भाई का मरना प्रसाद जी को अखर गया। इस दुर्घटना से उनका जीवन अस्त-व्यस्त हो गया। परिवार का सब भार उन पर आ गया। उनके तीन विवाह हुये। तीसरी पत्नी से श्री रत्नाकर उत्पन्न हुए जो इस समय पैतृक व्यापार चला रहे हैं।

प्रसादजी का पारिवारिक जीवन अधिक सुखमय नहीं था। जीवन की आर्थिक कठोर परिस्थितियों और ऋण के कारण वे अधिकतर चिन्तित रहते थे। फिर भी वे अपने व्यवसाय के साथ साथ साहित्य सेवा करते रहे। इनके साहि-

त्यिक मित्रों में सर्वं श्री रायकृष्णदास, विनोद शंकर व्यास, मु० प्रेमचन्द और पं० केशवप्रसाद मिश्र प्रमुख थे।

प्रसाद जी सरल, उदार मितभाषी, स्पष्टवक्ता और साहसी व्यक्ति थे। व्यायाम करने का उन्हें बचपन से ही अभ्यास था तथा आप अध्ययनशील थे। आत्म-प्रशंसा और पर-निन्दा दोनों से ही वे सदा दूर रहते थे तथा परहित-साधन में सदैव तत्पर रहते थे। जीवन के अन्तिम दिनों में आपको राजयक्ष्मा हो गया। इस रोग का हाल सुनकर वे अपने जीवन से उदासीन हो गये और कार्तिक शुक्ल एकादशी संवत् १९९४ वि० की संध्या को साढ़े चार बजे काशी में उन्होंने अपनी इहलोक-लीला समाप्त की। इस प्रकार शिव के परम उपासक, अमर काव्य-प्रणेता युगपुरुष ने इस असार संसार को सदा के लिये छोड़ दिया।

हिन्दी साहित्य की समृद्धि के लिए प्रसाद जी वास्तव में प्रसाद ही थे। शिवभक्त होने के नाते उन्होंने स्वयं तो संसार का गरल पान किया और जगत को सदा अमृत ही पिलाया।

प्रसादजी की रचनायें—प्रसादजी हिन्दी-साहित्य के प्रकाण्ड पंडित एवं प्रतिभाशाली कवि थे। उनकी चतुर्मुखी प्रतिभा ने हिन्दी-साहित्य के प्रायः प्रत्येक अंग को प्रोदभासित किया। पहले उन्होंने ब्रज-भाषा में कवितायें लिखीं। लेकिन काव्य की इस शैली पर अधिक दिन न चलकर उन्होंने अपना स्वतन्त्र मार्ग बनाया। उन्होंने नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, आलोचना, काव्य आदि सभी विषयों पर उच्चकोटि की रचनाएँ कीं। जिनका विवरण निम्नानुसार है—

१. नाटक—सज्जन, प्रायश्चित, कल्याणी-परिणय, राज्यश्री, अजातशत्रु, विशाख, कामना, जनमेजय का नागयज्ञ, स्कन्दगुप्त, एक घूँट, चन्द्रगुप्त, और ध्रुवस्वामिनी।

२. उपन्यास—कङ्काल, तितली, इरावती (अपूर्ण)

३. कहानी संग्रह—छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी, इन्द्रजाल।

४. निबन्ध—काव्य और कला।

५. काव्य—काव्य की दृष्टि से प्रसादजी की रचनायें निम्नानुसार वर्गीकृत हैं:—

(क) चम्पू—उर्वशी, बभ्रुवाहन।

(ख) महाकाव्य—कामायनी।

(ग) गीत नाट्य—करुणालय

(घ) मुक्तक प्रबन्ध—प्रेम-राज्य, प्रेम-पथिक, महाराणा का महत्व, आँसू।

(ङ) मुक्तक-संग्रह—शोकोच्छ्वास, कानन-कुसुम, चित्राधार, झरना, लहर।

प्रसादजी की उपर्युक्त रचनाओं को देखने से विदित होता है कि वह हिन्दी साहित्य के निष्णात पण्डित थे। उन्होंने अपनी प्रतिभा से हिन्दी साहित्य को समृद्धशाली एवं सम्पन्न बनाया। हिन्दी जगत इसके लिये उनका चिर ऋणी रहेगा।

प्रसादजी की काव्य-प्रतिभा का क्रमिक विकास—हिन्दी जगत में प्रसादजी का प्रवेश सं० १६६५ के लगभग हुआ। आरम्भ में वह ब्रजभाषा के कवि थे। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रभाव से उन्होंने ब्रजभाषा को छोड़ कर खड़ी बोली को अपनाया और उसी में रचनाएँ करने लगे। बंगाल की गीति-काव्य शैली से अधिक प्रभावित होने के कारण उन्होंने 'करुणालय', 'कानन-कुसुम', 'प्रेम-पथिक', 'महाराणा का महत्व' आदि काव्य-ग्रन्थ इसी शैली में लिखे। उसके बाद अभिनव तथा स्वच्छन्द काव्य शैली में उन्होंने 'झरना' (सं० १६७५) की रचना की। प्रसादजी की शैली में छायावाद के अंकुर विद्यमान थे। सं०१६८२ में उनकी प्रौढ़ रचना 'आँसू' का प्रकाशन हुआ। छायावादी काव्य में 'आँसू' का प्रथम स्थान था। 'आँसू' के प्रकाशन के लगभग ८ वर्ष पश्चात् सं० १६६० में उनकी 'लहर' रचना प्रकाशित हुई। प्रसादजी की इस रचना में उनका रहस्यवादी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। इसके दो वर्ष बाद ही सं० १६६२ में प्रसादजी ने हिन्दी साहित्य की अमर निधि 'कामायनी' हमें प्रदान की। निश्चित ही यह महाकाव्य आधुनिक युग के महाकाव्यों में सर्वश्रेष्ठ है। संक्षेप में प्रसादजी की काव्य प्रतिभा के विकास का यही इतिहास है।

प्रसाद की काव्य साधना—यद्यपि प्रसादजी ने हिन्दी-साहित्य के प्रायः

सभी अंगों पर अपनी लेखनी चलाई किन्तु प्रधानतः वह कवि के रूप में विशेष सम्मानित हैं। उन्होंने अपनी समस्त रचनाओं में अपने कवि हृदय को प्रधानता दी है। हिन्दी काव्य-साहित्य में प्रसादजी ने नवीन विषयों का सन्निवे किया और विकृत शृङ्गार के प्रति विद्रोह करके उसे स्वस्थ और व्यापक बनाय उनके काव्य में कल्पना और सौंदर्य का महत्वपूर्ण स्थान है। एक ओर ज उन्होंने सौंदर्य को भौतिक आकर्षण से रहित नहीं होने दिया वहां दूसरी ओ उसे ऐन्द्रिकता के भार से सर्वथा मुक्त रखा। नारी सौंदर्य का निम्न चित्र देखिये

"नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखिला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ बन बीच गुलाबी रंग॥"

प्रसादजी के इस चित्र में कितनी दिव्यता भरी है। ऐन्द्रिकता का यहाँ नाम निशान भी नहीं है। इसी प्रकार इडा का रूपकमय चित्र भी दृष्टव्य है :—

'बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल।
यह विश्व-मुकुट-सा उज्ज्वलतम, शशि खण्ड सदृश था स्पष्ट भाल।
दो पद्म पलाश चषक से दृग, देते अनुराग-विराग ढाल॥

इन अवतरणों से यह स्पष्ट होता है कि मानव सौंदर्य के चित्रण में प्रसादजी बड़े ही कुशल और सिद्धहस्त थे। उन्होंने रीतिकालीन कवियों की भाँति नारी-सौंदर्य का नग्न चित्रण कहीं नहीं किया और न द्विवेदीकालीन कवियों की भाँति उसका सर्वथा-बहिष्कार ही किया।

नारी भावना—प्रसाद की नारी विलासिता की मूर्ति नहीं अपितु श्रद्धा और विश्वास की मूर्ति है जो मानव के ऊबड़-खाबड़ और नीरस जीवन को समतल और सरस बना देती है। 'कामायनी' में कवि ने कहा भी है :—

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पगतल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में॥

नारी पुरुष की चिरसंगिनी है। वह पुरुष द्वारा त्यक्त किये जाने पर भी

कुछ उत्सर्ग करके पुरुष के जीवन को सार्थक बनाने में ही वह अपने जीवन को सार्थक समझती है ।

प्रकृति-प्रेम—मानव सौन्दर्य के चित्रण के साथ-साथ प्रसादजी ने प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण भी अपने काव्य में किया है। कामायनी के आरम्भ में प्रलय का चित्र देखिये :—

नीचे जल था, ऊपर हिम था एक तरल था एक सघन।
एक तत्व की ही प्रधानता, कहो उसे जड़ या चेतन ॥

इसी भाँति 'लहर' में सूर्योदय का रमणीय चित्र भी दृष्टव्य है :—

अन्तरिक्ष में अभी सो रही है ऊषा मधुबाला,
अरे खुली भी नहीं अभी प्राची की मधुशाला ॥
सोता तारक किरन पुलक रोमावलि मलयज बात,
लेते अँगड़ाई नीड़ों में अलस विहग मृदुगात।
रजनी-रानी की बिखरी है म्लान कुसुम की माला,
अरे भिखारी तू चल पड़ता लेकर टूटा प्याला।

कहीं-कहीं कवि ने प्रकृति पर मानवीय भावों का आरोप करके प्रकृति के सुन्दर चित्र उपस्थित किये हैं। 'लहर' के निम्नांकित गीत को देखिये। इसमें कवि ने मानवीकरण तथा रूपक अलंकारों की सहायता से उषा काल का रमणीय चित्र उपस्थित किया है :—

बीती विभावरी जाग री।
अम्बर पनघट पर डुबो रही,
तारा-घट ऊषा नागरी।
खग कुल कुल-कुल सा बोल रहा,
किसलय का अँचल डोल रहा,
लो लतिका भी भर लाई,
मधु मुकुल नवल रस गागरी,
अधरों में राग अमन्द पिये,
केशों में मलयज बन्द किये,
तू कब तक सोवेगी आली
आँखों में भरे विहाग री॥

इन पंक्तियों में प्रसादजी ने प्रकृति के रूप का बड़ा ही सुन्दर मानवीक
किया है। वास्तव में प्रसाद के प्राकृतिक चित्रों का ऐश्वर्य और उनका वै
अद्भुत है। जिस दृश्य का भी चित्रण वह करते हैं उसका संश्लिष्ट चि
पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर देते हैं।

देश प्रेम—प्रसादजी के काव्य में हमें देश-प्रेम भी देखने को मिलता है
निम्न छन्द में देखिये—

> हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
> स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतन्त्रता पुकारती॥
> अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोचलो।
> प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो बढ़े चलो॥

इसी प्रकार 'चन्द्रगुप्त' नाटक में कार्नेलिया द्वारा गाया हुआ निम्न गीत भी राष्ट्र प्रेम से ओत प्रोत है—

> 'अरुण यह मधुमय देश हमारा,
> जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
> सरस तामरस गर्भ-विभा पर,
> नाच रही तरु-शिखा मनोहर
> छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा॥

मानव प्रेम—राष्ट्र प्रेम के साथ-साथ कवि को *मानवता से भी प्रेम है*। पूँजीवाद द्वारा शोषण, उत्पीड़न, युद्ध और जन-संहार आदि का वह घोर विरोधी है। 'जीयो और जीने दो' ही उसका एक मात्र आदर्श है। देखिये—

> 'क्यों इतना आतङ्क ठहर जा ओ गर्वीले।
> जीने दे सबको, फिर तू भी सुख से जीले॥'

कवि चाहता है:—

> 'दुख से जली हुई यह धरणी प्रमुदित हो सरसे।
> प्रेम प्रचार रहे जगती तल दया-दान दर से॥
> मिटे कलह, शुभ शांति प्रकट हो अचर और चर से॥'

भाव सौन्दर्य—प्रसादजी हर्ष-विषाद-युक्त मानवीय मनोभावों के चित्रण में बड़े ही सिद्धहस्त हैं। उनका भाव-सौंदर्य देखने के लिये हमें आँसू, झरना, लहर, कामायनी तथा नाटकीय गीतों का अध्ययन करना अपेक्षित है। इन काव्य ग्रंथों में भावों का जैसा सुन्दर चित्रण हुआ है वैसा अन्यत्र बहुत कम देखने को मिलता है। मानवीय मनोवृत्तियों को उन्नत रूप देने वाली भावनायें भी उनके सौन्दर्य और प्रेम में सन्निविष्ट हैं।

प्रसादजी के यौवन के चित्र भी बड़े ही गंभीर, मर्यादित और आदर्श पूर्ण हैं। यद्यपि उनके ऐसे चित्रों में कल्पना का प्राधान्य रहता है फिर भी वे यथार्थ से जान पड़ते हैं। यौवन का एक चित्र देखिये—

यौवन ! तेरी चंचल छाया।
इसमें बैठ घूँट भर पीलूँ जो रस तू है लाया ॥

'आँसू' में से यौवन का एक अन्य चित्र भी द्रष्टव्य है—

शशिमुख पर घूँघट डाले, अंचल में दीप छिपाये।
जीवन की गोधूली में, कौतूहल से तुम आये ॥

कामायनी में भी वसंत के माध्यम से यौवन का बड़ा ही सरस और कलापूर्ण वर्णन कवि ने प्रस्तुत किया है—

मधुमय वसन्त जीवन वन के,
वह अंतरिक्ष की लहरों में,
कब आये थे तुम चुपके से,
जीवन के पिछले पहरों में
क्या तुम्हें देख कर आते यों,
मतवाली कोयल बोली थी।
उस नीरवता में अलसाई,
कलियों ने आँखें खोली थीं ॥

जिस प्रकार पतझर की अंतिम रजनी के पिछले पहरों में [illegible] [illegible] में बहता हुआ अनजाने एकाएक उपस्थित हो जाता है, उसी प्रकार किशोरावस्था के पूर्ण होते-होते यौवन भी [illegible] रूप में हृदय के भावों में आ जाता है। वसंत के स्वागत में जैसे कोयल मस्त होकर गाने लगती है

वैसे ही यौवन के आने पर भी स्वर भरने लगता है। जैसे वसंत के आने पर कलियाँ खिलकर फूल हो जाती हैं उसी भाँति यौवन के प्रादुर्भाव से सुप्त मनोभाव जाग्रत होकर विकसित होने लगते हैं।

इन उद्धरणों से पता चलता है कि भावों के मार्मिक तथा रमणीय चित्र अंकित करने में प्रसादजी बड़े ही सिद्धहस्त हैं।

छायावाद और रहस्यवाद—छायावादी कवियों में प्रसादजी सर्वोपरि एवं प्रथम छायावादी कवि हैं, वह प्रकृति प्रेमी हैं। प्रकृति उनके लिये इतनी मनमोहक है कि जिसके संकेत मात्र पर वह उसकी ओर खिंचे हुये चले आते हैं। प्रकृति के मनोरम प्रभाव के साथ ही साथ उन पर अद्वैतवाद का भी यथेष्ट प्रभाव था। इन्हीं प्रभावों के कारण प्रसादजी ने प्रकृति में मानव-जीवन की प्रतिच्छाया देखी है और कवि के नाते उसका यथार्थ चित्रण किया है। छायावाद का एक उदाहरण देखिये :—

रजनी रानी की बिखरी है म्लान कुसुम की माला,
अरे भिखारी! तू चल पड़ता लेकर टूटा प्याला।
गूँज उठी तेरी पुकार कुछ मुझको भी दे देना,
कन-कन बिखरदान कर अपना यश भी तू ले लेना॥

विशुद्ध छायावाद का एक और उदाहरण भी कामायनी में से देखिये :—

यह किरणों मुग्ध अस्त प्रकृति का
आज लगा हँसने फिर से।
वर्षा बीती, हुआ सृष्टि में
शरद विकास नये सिर से।

यहाँ प्रकृति पर मानवीय भावों का आरोप कर उसका मानवीकरण किया गया है।

प्रसादजी का जीवन आध्यात्मिक जीवन था। वेदादि दार्शनिक ग्रन्थों का उन्होंने गहन अध्ययन किया था अतः उनके कवि हृदय पर उनका पर्याप्त प्रभाव था। इसीलिये उनके काव्य में छायावाद के साथ-साथ रहस्यवाद के दर्शन भी होते हैं। कामायनी में से रहस्यवाद का एक उदाहरण लीजिये :—

महानील इस परम व्योम में,
अंतरिक्ष में ज्योतिर्मान,
ग्रह, नक्षत्र और विद्युत्कण,
किसका करते से संधान।
छिप जाते हैं और निकलते
आकर्षण में खिंचे हुए?
तृण, वीरुध लहलहे हो रहे
किसके रस से सिंचे हुए?
सिर नीचा कर किसकी सत्ता,
सब करते स्वीकार यहाँ,
सदा मौन हो प्रवचन करते,
जिसका, वह अस्तित्व कहाँ?

रस योजना—प्रसादजी के काव्य में रस-परिपाक अपने स्वाभाविक रूप में हुआ है। यद्यपि क्लिष्ट कल्पनाओं के कारण कहीं-कहीं बाधायें भी उपस्थित हुई हैं। प्रमुखतः वह शृंगार-रस के कवि हैं। उनकी रचनायें शृंगार-रस प्रधान तो होती ही हैं किन्तु उनका पर्यवसान शांत रस में हुआ है। इन दो रसों के अतिरिक्त करुण रस भी उनकी रचनाओं में प्राप्त होता है। 'आँसू' उनका करुण-रस-प्रधान मार्मिक गीति-काव्य है जिसमें प्राचीन विलास की स्मृति से उत्पन्न कसक या पीड़ा की अभिव्यक्ति अत्यन्त मार्मिक बन पड़ी है।

अलंकार—प्रसादजी प्रमुखतः भाव-लोक के कवि हैं। भावों का यथार्थ चित्रण करना उनका परम लक्ष्य रहा है। अपने इस लक्ष्य की पूर्ति के हेतु उन्होंने काव्य में अलंकारों का प्रयोग किया तो है किन्तु वह गौण रूप से है। उनकी रचनाओं में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का सफल प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त मानवीकरण, और विशेषण विपर्यय अलंकारों को भी उन्होंने अपने काव्य में स्थान दिया है। अलंकारों के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं:—

उपमा:—
आह! घिरेगी हृदय लहलहे,
खेतों पर करका-घन-सी।
छिपी रहेगी अंतरतम में,
सबके तू निगूढ़ धन-सी॥
—चिन्ता सर्ग (कामायनी)

मानवीकरण:— जब कामना सिन्धुतट आई,
ले संध्या का तारा दीप।
फाड़ सुनहली साड़ी उसकी,
तू हँसती क्यों अरी प्रतीप !

—आशा सर्ग (कामायनी)

रूपक:— ओ चिन्ता की पहली रेखा।
अरी विश्व-वन की व्याली॥

—चिंता सर्ग (कामायनी)

उत्प्रेक्षा:— उस असीम नीले अंचल में,
देख किसी की मृदु मुसक्यान।
मानों हँसी हिमालय की है,
फूट चली करती कलगान॥

—आशा सर्ग (कामायनी)

विशेषण विपर्यय:— मनन किया करते वे बैठे,
ज्वलित अग्नि के पास वहाँ।
एक सजीव तपस्या जैसे,
पतझड़ में कर वास रहा॥

—आशा सर्ग (कामायनी)

भाषा—प्रसादजी की भाषा दो रूपों में प्राप्त होती है एक व्यावहारिक भाषा और दूसरी संस्कृत-प्रधान भाषा। आरम्भ में वह ब्रजभाषा में कविता करते थे अतः उनकी भाषा प्रायः सरल होती थी किन्तु ज्यों-ज्यों उनका अध्ययन गम्भीर होता गया त्यों-त्यों उनकी भाषा भी गम्भीर होती गई। उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में हमें व्यावहारिक भाषा प्राप्त होती है जो कहीं-कहीं शिथिल है। मनोभावों के अन्तर्द्वंद्व तथा गम्भीर विषयों के विवेचन में उनकी भाषा संस्कृत-प्रधान है। संस्कृत की तत्सम शब्दावली से युक्त होने के कारण वह कुछ क्लिष्ट हो गई है किन्तु फिर भी उसकी स्वाभाविकता और गति में बाधा नहीं पड़ी है। प्रसादजी का शब्द चयन अद्वितीय है। वाक्यों में एक-एक

भरमार उनकी भाषा में कहीं नहीं है। मुहावरों का उनकी भाषा में प्रायः अभाव है। कुछ मुहावरों का प्रयोग कृत्रिम रूप में हुआ है जो खटकता है। अन्य भाषाओं की शब्दावली का प्रयोग भी इनकी भाषा में नहीं है। उनकी भाषा में स्वाभाविक संगीत है जिसमें एक अजीब मस्ती, उन्माद और तल्लीनता भरी हुई है। यही कारण है कि उनकी भाषा की क्लिष्टता खटकती नहीं है। मनोभावों को यथातथ्य रूप में चित्रण करने के लिये उन्होंने तीनों शब्द शक्तियों से सहायता ली है। संक्षेप में उनकी भाषा प्रांजल, मधुर, प्रवाहयुक्त, गम्भीर, व्याकरण सम्मत और सशक्त है। उनकी व्यावहारिक और संस्कृत-प्रधान दोनों ही प्रकार की भाषा का एक-एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है:—

व्यावहारिक भाषा—सज्जन चित्त चकोरन को हुलसावन मावन पूरो अनिन्दु है।
मोहन काव्य के प्रेमिन के हित साव सुधारस को वलि बिंदु है॥
ज्ञान प्रकाश प्रसारि हिये विच, ऐसी जो सूरसता तम बिंदु है।
काव्य महोदधि में प्रगट्यो, रसरीति कलायुत पूरण इन्दु है॥

ब्रजभाषा का कैसा मँजा हुआ रूप है उपर्युक्त सवैये में। इसमें शिथिलता कहीं दिखाई नहीं देती।

संस्कृत प्रधान भाषा— "किस गहन गुहा से अति अधीर।
झंझा-प्रवाह-सा निकला यह जीवन विक्षुब्ध महासमीर॥
ले साथ विकल परमाणु पुंज नभ, अनल, क्षिति और नीर।
भयभीत सभी को भय देता भय की उपासना में विलीन॥
प्राणी कटुता को बाँट रहा जगती को करता अधिक दीन।"

उपर्युक्त छन्द में शब्द-चयन कितना सुन्दर है। एक एक शब्द नगीना जैसा जड़ा हुआ प्रतीत होता है।

छन्द योजना—प्रसादजी ने कवित्त और सवैयों में कविता लिखना प्रारंभ किया था किन्तु शीघ्र ही खड़ी बोली की कविता में नवीन-नवीन छन्दों का प्रयोग करने लगे। नये-पुराने, प्राच्य-पाश्चात्य, देशी-विदेशी, तुकान्त-अतुकान्त, मात्रिक, वर्णवृत्त सभी प्रकार के छन्दों का उन्होंने भावानुकूल सृजन किया है। छन्दों में सर्वत्र संगीतात्मकता का ध्यान विशेष रूप से रखा है। उन्हों ने सानेट

(Sonnet) जैसे अंग्रेजी और त्रिपदी तथा पयार जैसे बंगाली छन्दों का भी बड़ी सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। अतुकान्त छन्दों (Blank Verse) में उन्होंने 'करुणालय' लिखा है। इसके अतिरिक्त कामायनी में ताटंक, पादाकुलक रूपमाला, सार, रोला आदि छन्दों का प्रयोग मिलता है। इस प्रकार छन्द-योजना में प्रसादजी प्राचीन और नवीन हैं।

शैली—भाषा की भांति प्रसादजी की शैली स्पष्ट, परिष्कृत एवं प्रवाह पूर्ण है। उसमें सरसता, माधुर्य, स्वाभाविकता, धारावाहिकता, ओज और सुसंगठन है। इसके अतिरिक्त लाक्षणिक पदावली की प्रचुरता है। अभिव्यक्ति में सौन्दर्य है। उनकी शैली पर उनके विषय, उनकी स्वाभाविक रुचि, उनके गम्भीर अध्ययन और व्यक्तित्व का विशेष प्रभाव है। वे अपनी शैली के स्वयं निर्माता हैं।

हिन्दी साहित्य में प्रसाद जी का स्थान—प्रसादजी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण मनोवृत्ति के प्रतिनिधि थे। उनका महत्व इसलिये नहीं है कि वे छायावाद के प्रवर्तक हैं या हमारे इतिहास और संस्कृत के नेता हैं अपितु उन्होंने मानव की सद्वृत्तियों की विजय यात्रा के प्रति हमारा विश्वास दृढ़ किया है।

प्रसादजी ने पहले नाटक लिखे जिनमें वे कहीं-कहीं बहुत मनोवैज्ञानिक हो गये हैं। उनके 'आँसू' में करुणा भरी हुई है। जीवन जैसे करुणा की रात्रि में परिवर्तित हो गया हो।

गीतों की रचना करने में प्रसादजी पूर्ण सफल हैं। मनोभावों के चित्रण में तो उन्हें विशेष सफलता मिली है उनके गीतों में भावना का स्वाभाविक प्रवाह है।

उनकी कविता में ऐन्द्रिय जगत का काल्पनिक सुख है। सौन्दर्य, प्रेम और यौवन मस्ती के साथ चित्रित हुआ है। उदाहरण के लिये निम्न छन्द देखिये—

"तुम कनक किरण के अन्तराल।
लुक, छिप-कर-चलते हो क्यों॥
नत मस्तक-गर्व न वह-हरते।

हैं लाज भरे सौन्दर्य बताओ,
मौन बने रहते हो क्यों ?"

प्रसाद में कल्पना तत्व अधिक है। वे सदा कल्पना की एक नई दुनिया में एक सुनहले संसार में विचरण करते रहते हैं। उनकी कल्पना में इन्द्रिय सुख का स्पन्दन रहता है।

प्रसादजी गम्भीर प्रकृति के थे, अतः उनकी रचनाओं में गम्भीरता का प्राधान्य है। रहस्यवाद की विवेचना में उनकी गम्भीरता अधिक अस्पष्ट होगई है। ऐसे अवसर पर उनकी भाषा क्लिष्ट और दुर्बोध बन गई है।

वैसे तो प्रसादजी ने कहानी, उपन्यास, नाटक, कविता, निबन्ध सभी कुछ लिखा है, किन्तु अपने प्रमुख रूप में वे कवि हैं। उनकी समस्त रचनाओं में करुणा, दया, सहानुभूति और विश्व-प्रेम का स्वर है। वर्तमान युग के पीड़ित और जर्जरित मानव को उनका यही सन्देश है। दार्शनिक भाव भूमि पर उन्होंने अपने इस सन्देश को जिस प्रकार सँवारा है वह अपने में महान है। कोई भी व्यक्ति उनका अनुकरण नहीं कर सकता। निस्सन्देह प्रसादजी हिन्दी साहित्य के अद्वितीय कलाकार हैं।

आलोचनात्मक प्रश्नोत्तर

प्रश्न १—प्रसादजी की काव्य कला पर एक संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित निबन्ध प्रस्तुत कीजिये।

उत्तर—प्रसादजी नवयुग के सर्वश्रेष्ठ कवि और वर्तमान काल की नवीन काव्य-धारा के प्रवर्तक हैं। मानव मन की कोमल अनुभूतियों को काव्य में स्थान देने का श्रेय प्रसादजी को ही है।

प्रसादजी की कविता का मुख्य विषय प्रेम है। परन्तु प्रेम के वर्णन में कवि ने अश्लीलता को गंध नहीं आने दी है। प्रेम के उभय पक्षों (संयोग और वियोग) का अत्यन्त सुन्दर चित्रण इनके काव्य में मिलता है। लौकिक प्रेम की अनुभूति का वर्णन भी यथेष्ट सुन्दर बन पड़ा है। उदाहरण के लिये निम्न पंक्तियाँ देखिये :—

चिर तृषित कण्ठ से तृप्त विधुर
वह कौन अकिंचन अति आतुर
अत्यन्त तिरस्कृत अर्थ सदृश
ध्वनि कम्पित करता बार-बार
धीरे से वह उठता पुकार
मुझको न मिला रे कभी प्यार ।

प्रेम का आरंभ प्रिय को देखने ही हो जाता है और कवि उसे देखकर कह उठता है —

मधु राका मुसक्याती थी पहले देखा जब तुमको।
परिचित से जाने कब के तुम लगे उसी क्षण हमको॥

प्रसादजी का आँसू विरह का मार्मिक गीतिकाव्य है। इन गीतों में प्राचीन विलास की स्मृति से उत्पन्न कसक या पीड़ा की अभिव्यक्ति अत्यन्त मार्मिक बन पड़ी है। आरंभ में आँसू विरही की वेदना के रूप में ही प्रवाहित हुआ पर आगे चलकर उत्तरार्द्ध में लोक के दुःख की ओर भी कवि की दृष्टि गई है—

यह हँसी और यह आँसू, घुलने दे मिल जाने दे
बरसात नई होने दे, कलियों को खिल जाने दे।
चुन-चुन ले रे कन-कन से जगती की सजग व्यथाएँ।
रह जायेंगी कहने को, जन रंजन करी कथाएँ॥

यही कारण है कि आँसू का अवसान अत्यन्त ही मंगलमय रूप से हुआ है और कवि जीवन के सुख-दुःख तथा विरह-मिलन के प्रति एक दार्शनिक दृष्टिकोण रखता है—

मानव जीवन वेदी पर, परिणय है विरह मिलन का।
सुख-दुख दोनों नाचेंगे, है खेल आँख का मन का॥
चेतना लहर न उठेगी, जीवन समुद्र थिर होगा।
सन्ध्या हो सर्ग प्रलय की, विच्छेद मिलन फिर होगा॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसादजी ने गीतों की रचना में अभूतपूर्व

मे भावना का स्वाभाविक प्रवाह सर्वत्र मिलता है। भावों की शृङ्खला में वे नहीं उलझते।

उनकी कविता वेदना से दूर कल्पना लोक की रंगीनियों में विहार करती है। उसमें वास्तविक सुख नहीं तो इन्द्रिय जगत का काल्पनिक सुख है। सौंदर्य, प्रेम और यौवन अपनी पूरी मस्ती में चित्रित हुआ है—

"तुम कनक-किरण के अन्तराल
लुक छिपकर चलते हो क्यों?
नत मस्तक गर्व वहन करते,
यौवन के घन रस कन ढरते?
हे लाज भरे सौन्दर्य बतादो
मौन बने रहते हो क्यों?

देखिये कितना अनुभूतिपूर्ण सुख है इस कल्पना मे।

प्रसाद में कल्पना तत्व अधिक है। वे सदा कल्पना की एक नई दुनिया में एक सुनहले संसार में विचरण करते हैं। उनकी कल्पना में इन्द्रिय सुख का स्पन्दन रहता है।

आँसू के अतिरिक्त प्रसादजी की विभिन्न प्रकार की कविताओं का संग्रह 'लहर' नाम से प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक की प्रारंभिक कविता 'लहर' देखिये—

उठ उठ री लघु लोल लहर,
करुणा की नव अंगराई सी,
इस सूने तट पर छिटक छहर,
तू लौट कहाँ जाती है री।

प्रसादजी की स्फुट कविताओं के संग्रह 'आँसू' और 'लहर' के अतिरिक्त 'प्रेम पथिक', 'कानन कुसुम' तथा 'झरना' के रूप में भी प्रकाशित हुये हैं। इनके अतिरिक्त अनेक सुन्दर तथा मधुर गीत इनके नाटकों में बिखरे पड़े हैं।

प्रसादजी की 'कामायनी' विश्व-साहित्य में अपना अद्वितीय स्थान रखती है। इसकी कथा के लिये कवि ने ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण, उपनिषदों आदि

से सामग्री ग्रहण की है। यह १५ सर्गों का महाकाव्य है। इसमें कवि ने मानव जाति के ऐतिहासिक विकास और आध्यात्मिक भावना का सुन्दर समन्वय किया है।

कामायनी में मनु और श्रद्धा की कथा के रूप में मन, बुद्धि, चिन्ता आदि मानवीय भावनाओं का विवेचन किया गया है। मनु मन, श्रद्धा विश्वास समन्वित रागात्मिका वृत्ति और इड़ा व्यवसायात्मिका बुद्धि के प्रतीक के रूप में चित्रित की गई है। प्रलय की विभीषिका के पश्चात् कामायनी का नायक मनु अमरों की मृत्यु पर विचार कर रहा है। वह अपने एकाकी जीवन से शीघ्र ऊब जाता है। उसी समय काम की पुत्री श्रद्धा से उसका परिणय हो जाता है। श्रद्धा गर्भवती होती है और वह अपनी भावी सन्तान के संरक्षण की चिन्ता में संलग्न हो जाती है। मनु इसे पसन्द नहीं करता। वह चाहता है कि श्रद्धा अपनी सभी साधनाओं की पूर्णता उसी में देखे। इससे पूर्व भी यज्ञ में पशु बलि देने के फलस्वरूप मनु और कामायनी में मन मुटाव हो चुका था। परिणामस्वरूप मनु श्रद्धा को छोड़कर शारीरिक सुख साधना के लिये सारस्वत प्रदेश चला जाता है। जहाँ इड़ा से भेंट होती है। मनु वहाँ राज-प्रबन्धक से धीरे-धीरे सम्राट् बन जाता है और इड़ा का भी अधिपति बनना चाहता है। उसकी इस मनोवृत्ति से इड़ा की प्रजा मनु के विरुद्ध विद्रोह कर उठती है। भयंकर संघर्ष होता है जिसमें मनु घायल हो मूर्छित हो जाता है। इधर श्रद्धा इस वृत्तान्त को स्वप्न में देखती है और कुमार को साथ लेकर मनु की खोज करती हुई उस स्थल पर पहुँच जाती है जहाँ मनु मूर्छित पड़ा हुआ था। श्रद्धा के उपचार से मनु स्वस्थ हो जाता है। उसका मन क्षोभ से भर जाता है और रात में सबको छोड़कर चल देता है। श्रद्धा कुमार को इड़ा के पास छोड़कर मनु की खोज में पुनः चल देती है। मनु एक गुफा में मिल जाते हैं। वे दोनों कैलाश की ओर चले जाते हैं। वहाँ श्रद्धा ज्ञान, इच्छा और कर्म के स्वर्ण, रजत और लौहमय तीनों बिन्दुओं की पृथक सत्ता दिखाकर कहती है कि आजकल ये तीनों अलग-अलग हो गये हैं। आधुनिक विडम्बना का यही कारण है। उसकी हँसी के आलोक में ये तीनों

आनन्दलोक में पहुँचते हैं जहाँ पाप-ताप का कोई अस्तित्व नहीं रहता।

कथा का दार्शनिक आधार यह है कि श्रद्धा के द्वारा ही मनुष्य संसार का कल्याण करता हुआ स्वयं आनन्द का अनुभव कर सकता है। इड़ा या बौद्धिक वृत्ति जीवन को तर्क के जाल में फँसाये रहती है और उसे तृप्ति का उपभोग नहीं करने देती। निश्चित ही इन दोनों वृत्तियों की समन्वयात्मक साधना से ही सुख प्राप्त कर आनन्द की प्राप्ति हो सकती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कामायनी विराट् कल्पना, अगाध दार्शनिकता तथा अत्यन्त सूक्ष्म मनोवैज्ञानिकता का महाकाव्य है।

भाषा:—प्रसादजी की भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है। यह सरल और क्लिष्ट दो रूपों में प्राप्त होती है। आरम्भ में उनकी भाषा प्रायः सरल थी, लेकिन अध्ययन की गहनता से भावों में परिपक्वता आती गई और उनकी भाषा क्रमशः गम्भीर होती गई। कामायनी तक आते-आते प्रसादजी की भाषा अत्यन्त शुद्ध, परिमार्जित तथा प्रौढ़ होगई। संस्कृत साहित्य का गम्भीर अध्ययन करने से उनकी भाषा में संस्कृत तत्सम शब्दावली का प्रचुर प्रयोग हुआ है। उनका शब्द-चयन अद्वितीय है। एक-एक शब्द उनकी रचनाओं में नगीना की भाँति जड़ा हुआ है। मुहावरों का उनकी रचनाओं में प्रायः अभाव है। उनकी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है संगीतात्मकता। उनके संगीत में अपूर्व उन्माद है, मस्ती है, जो पाठक को बरबस ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है।

छन्द:—प्रसादजी ने कवित्त और सवैयों में अपनी कविता का श्रीगणेश किया था किन्तु शीघ्र ही खड़ी बोली की कविता में वे नवीन-नवीन छन्दों का प्रयोग करने लगे। उन्होंने नये-पुराने, प्राच्य-पाश्चात्य, देशी विदेशी, तुकान्त अतुकान्त, मात्रिक, वर्णिक सभी प्रकार के छन्दों का भावानुकूल सृजन किया।

अलंकार और रस की कोई निश्चित योजना उनके काव्य में नहीं है। वैसे रचनाओं में अनुप्रास, श्लेष, यमक, वक्रोक्ति, उपमा रूपक, उत्प्रेक्षा मानवीकरण, विशेषण विपर्यय आदि सभी अलंकारों का सफल और स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। रसों में शृंगार, वीर, करुण और शान्त रस का प्राधान्य है।

शैली—भाषा की भांति प्रसादजी की शैली स्पष्ट, परिष्कृत एवं प्रवाहपूर्ण

स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण,
प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति।

इसके आगे कवि ने श्रद्धा का आत्म परिचय कराते हुये उसकी सांस्कृतिक अभिरुचि और कलाप्रिय जीवन की अभिव्यक्ति भी बड़े ही अच्छे ढङ्ग से की है:—

"भरा था मन में नव उत्साह,
सीखलूँ ललित कला का ज्ञान,
इधर रह गन्धर्वों के देश,
पिता की हूँ प्यारी सन्तान।"

श्रद्धा भारतीय नारी है, मनु की निभ्रान्त, निश्चेष्ट, असहाय अवस्था से वह द्रवित होकर उनसे पूछती है:—

तपस्वी! क्यों इतने हो क्लान्त!
वेदना का यह कैसा वेग!
आह! तुम कितने अधिक हताश
बताओ यह कैसा उद्वेग!

उसके पश्चात् वह मनु को जीवन और जगत का रहस्य बताती हुई उन्हें कर्म की प्रेरणा देती है। मनु को वह महाचिति के लीलामय आनन्द का मर्म बताती है तथा सृष्टि निर्माण में काम की उपादेयता सिद्ध करती है:—

कर रही लीलामय आनन्द
महाचिति सजग हुई सी व्यक्त,
विश्व का उन्मीलन अभिराम,
इसी में सब होते अनुरक्त।
काम मङ्गल से मंडित श्रेय,
सर्ग इच्छा का है परिणाम,
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल,
बनाते हो असफल भवधाम।

जब लीलामय प्रभु ही कर्म से विरत नहीं है फिर उसकी सृष्टि का सर्वश्रे-

प्राणी मानव कर्म से इस प्रकार पराङ्मुख कैसे हो सकता है। जीवन में दुःख सुख तो आते जाते रहते हैं। अतः दुःख से घबराकर भविष्य से अनजान हो मानव को कर्म से उदासीन नहीं होना चाहिये। इसी तथ्य की ओर संकेत करती हुई वह मनु से कहती है :—

दुःख के डर से तुम अज्ञात
जटिलताओं का कर अनुमान,
काम से झिझक रहे हो आज,
भविष्यत् से बनकर अनजान।
जिसे तुम समझे हो अभिशाप,
जगत की ज्वालाओं का मूल,
ईश का वह रहस्य वरदान,
कभी मत इसको जाओ भूल।

श्रद्धा मनु को कर्म में प्रवृत्त करने के लिये उन्हें केवल शाब्दिक उपदेश ही नहीं देती वरन् अपने जीवन का उत्सर्ग करके उसकी साधना में सहायक बनती है। मनु को दुःख के भार से हलका बनाती हुई वह सहचरी बनने का प्रस्ताव स्वयं ही करती है :—

दब रहे हो अपने ही बोझ
खोजते भी न कहीं अवलम्ब,
तुम्हारा सहचर बनकर क्या न
उऋण होऊँ मैं बिना विलम्ब !

इस भावपूर्ण प्रस्ताव के आगे मनु से कुछ कहते नहीं बनता। वे नतशिर हो जाते हैं। यद्यपि श्रद्धा को मनु के समीप आकर उसकी मानसिक तृप्ति के अनुरूप भाव सामग्री नहीं मिलती फिर भी श्रद्धा अपनी ओर से अपना सब कुछ मनु को समर्पित करने में लेशमात्र भी नहीं हिचकती। उसके इस समर्पण में कोई स्पृहा नहीं, कोई स्वार्थ नहीं केवल अपने शरीर धारण करने के कर्तव्य की पूर्ति है। अतः वह कहती है :—

समर्पण लो सेवा का सार
सजल संसृति का यह पतवार,

आज से यह जीवन उत्सर्ग
इसी पदतल में विगत विकार।
दया, माया ममता लो आज
मधुरिमा लो, अगाध विश्वास,
हमारा हृदय रत्ननिधि स्वच्छ
तुम्हारे लिये खुला है पास।
इस अर्पण में कुछ और नहीं, केवल उत्सर्ग छलकता है;
मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ इतना ही सरल झलकता है।

कितनी उदात्त एवं निस्पृह भावना है भारतीय नारी की। वह केवल देना ही जानती है बदले में और कुछ नहीं चाहती।

श्रद्धा यह भली भाँति जानती है कि नारी अपने समर्पण के बाद एक ऐसे बन्धन में बंध जाती है जिससे त्राण पाना उसके लिये सहज नहीं फिर भी वह उन्मुक्त भाव से अपना जीवन उत्सर्ग करने में तत्पर दिखाई देती है :—

"किन्तु बोली—क्या समर्पण आज का है देव!
बनेगा, चिर-बंध नारी हृदय हेतु सदैव।
आह में दुर्बल कहो क्या ले सकूँगी दान!
वह, जिसे उपभोग करने में विकल हों प्रान!

श्रद्धा का चरित्र-चित्रण करने में प्रसाद जी ने नारी के अबलात्व का भी अच्छा परिचय दिया है। नारी रूप सौंदर्य में पुरुष से कितनी भी बढ़कर हो किन्तु नारी का अबलात्व पुरुष से स्पर्द्धा कर उस पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता। श्रद्धा के शब्दों में:—

"यह आज समझ तो पाई हूँ,
मैं दुर्बलता में नारी हूँ,
अवयव की सुन्दर कोमलता,
लेकर मैं सबसे हारी हूँ।
मैं जभी तोलने का करती,
उपचार स्वयं तुल जाती हूँ।

भुज लता फँसाकर नर-तरु में,
झूले-सी झोंके खाती हूँ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने श्रद्धा का चित्रण सर्वांग पूर्ण नारी के रूप में किया है। नारी का उदात्त और महान रूप जो लज्जा सर्ग में अंकित है वह अपना सानी नहीं रखता:—

"नारी! तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।"

सुख-दुःख, पाप-पुण्य सभी को हँसते-रोते नारी सहन करती है। श्रद्धा को 'प्रसादजी' ने सहृदयता, सुन्दरता और सात्विकता के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है।

पुरुष अपने स्वार्थ की पूर्ति चाहता है। इसीसे उसे आत्म-तुष्टि होती है। वह समस्त सुखों का संग्रह कर अपने को ही आनन्दित देखना चाहता है। मनु की भी इसी प्रकार की मनोदशा है। श्रद्धा व्यक्तिगत सुखों को समष्टिगत सुखों में पर्यवसित करने की प्रेरणा मनु को देती है। यद्यपि दंभ और अहमत्व के कारण मनु उसे चरितार्थ नहीं करता किन्तु फिर भी विवेकशीला श्रद्धा उसे सत्पथ की ओर ले जाने का सक्रिय प्रयास करती है। वह मनु से कहती है:—

"अपने में भर सब कुछ कैसे,
व्यक्ति विकास करेगा!
यह एकान्त स्वार्थ भीषण है,
अपना नाश करेगा।
औरों को हँसते देखो मनु,
हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो।
सबको सुखी बनाओ॥"

श्रद्धा भारतीय आदर्श गृहिणी की भाँति अपनी छोटी सी गृहस्थी को

सुव्यवस्थित रखती है। उसने अपनी पर्ण कुटीर के ऊपर लताओं को चढ़ा दिया है। उसमें छोटे-२ वातायन भी काट दिये हैं। मनु गृहलक्ष्मी के गृह-विधान को देखकर चकित हो जाते हैं। गृहस्थी में स्त्री को जितनी गृह व्यवस्था की चिन्ता होती है उतनी पुरुष को नहीं रहती। श्रद्धा ने भविष्य के लिये शालियों का बीज संग्रह कर लिया है। होने वाले पुत्र के लिये बेंतसी लता का सुरुचिपूर्ण झूला बना रखा है। कौटुम्बिक जीवन में वही व्यक्ति सुख पा सकता है जो दूसरों के दोषों को सहन करने की क्षमता रखता है और अपने व्यवहार को अच्छा बनाये रखता है। श्रद्धा का जीवन भी ऐसा ही है, मनु में अनेक दोष होते हुये भी वह अपना व्यवहार उनके प्रति अच्छा रखती है। मनु की उदासीनता से वह अपने प्रेम में कोई कमी नहीं आने देता। इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रद्धा का चरित्र भारतीय नारी के आदर्श उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित है। उसमें जहाँ पति के प्रति अगाध प्रेम है वहाँ पुत्र के प्रति वात्सल्य भी है। गृह की सुव्यवस्था देखकर मनु को कुछ अच्छा-सा नहीं लगा फिर भी श्रद्धा अपनी गृहस्थी को सब तरह से पूर्ण बनाने में लीन है:—

> "चुप थे पर श्रद्धा ही बोली,
> देखो यह तो बन गया नीड़,
> पर इसमें कलरव करने को,
> आकुल न हो रही अभी मीड़।

श्रद्धा वात्सल्य की मूर्ति है। उसका पुत्र वन में विचरण करने निकल जाता है दिन भर बाहर रह कर संध्या के समय जब लौट कर आता है और मा को बुलाता है तो श्रद्धा के हृदय में वात्सल्य का सागर उमड़ पड़ता है। वह दौड़कर उसे अपने अंक में भर लेती है:—

> 'माँ' फिर एक किलक दूरागत गूँज उठी कुटिया सूनी,
> माँ उठ दौड़ी भरे हृदय में लेकर उत्कंठा दूनी।
> लुटरी खुली अलक, रज-धूसर बाँहें आकर लिपट गईं,
> निशा-तापसी की जलने को धधक उठी बुझती धूनी।

कौटुम्बिक जीवन से उसका आत्म-विस्तार बढ़ने लगता है। उसका प्रेम

मानव तक ही सीमित नहीं रहता प्रत्युत वह पशु तक भी पहुँच जाता है उसका आत्म विस्तार इतना अधिक हो जाता कि वह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को अपने जीवन में चरितार्थ करने लगती है। विश्व कल्याण की कामना से पशु बलि देने वाले मनु को फटकारती हुई वह कहती है:—

ये प्राणी जो बचे हुये हैं,
इस अचला धरती के।
उनके कुछ अधिकार नहीं,
क्या वे सब ही हैं फीके!
मनु! क्या यही तुम्हारी होगी,
उज्ज्वल नव मानवता।
जिसमें सब कुछ ले लेना हो,
हंत! बची क्या शवता!

श्रद्धा की इस विश्व कल्याण की भावना को देखकर मनु उसे साधारण रमणी न समझते हुए उसे इंगना मातृ रूप में देखते हैं:—

"तुम देवि आह कितनी उदार,
यह मातृमूर्ति है निर्विकार।
हे सर्व मंगले तुम महती,
सबका दुःख अपने पर सहती।
कल्याणमयी वाणी कहती,
तुम क्षमा-निलय में ही रहती।"

वस्तुतः श्रद्धा क्षमा, निश्छल प्रेम और त्याग की प्रतिमा है। दो बार मनु उसे छोड़ जाते हैं किन्तु वह अपने खोये हुये पति को पुनः प्राप्त कर अपने धैर्य और दृढ़ता से उसे आनन्द मार्ग पर ले जाती है। हिमालय प्रदेश के कैलास-लोक में अपना आश्रम बनाकर पति के साथ आध्यात्मिक जीवन बिताती है। इड़ा के साथ भी श्रद्धा का व्यवहार आदर्श है। वह सौतिया डाह से न स्वयं कुढ़ती है और न इड़ा के मन में ही ऐसी कोई भावना उत्पन्न करने का अवकाश देती है। आध्यात्मिक दृष्टि से भी श्रद्धा का दृष्टिकोण दार्शनिक,

बौद्धिक और तर्क सम्मत है। यह जगत का रहस्य और इसके निर्माण में सृष्टि का प्रयोजन शुद्ध दार्शनिक के रूप में देखती है और इड़ा तथा मनु को इस रहस्य को बताती हुई कहती है :—

"चिति का स्वरूप यह नित्य जगत,
यह रूप बदलता है शत-शत।
कण विरह मिलन में नृत्य निरत,
उल्लासपूर्ण आनन्द सतत।"

संक्षेप में, श्रद्धा के चरित्र में नारीत्व का पूर्ण विकास है। श्रद्धा के चरित्र द्वारा नारी-जीवन की सर्वाङ्गपूर्ण झाँकी प्रस्तुत करने में प्रसादजी पूर्ण रूप से सफल हुए हैं।

प्रश्न ४ :— प्रसादजी के प्रकृति-चित्रण पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

अथवा

प्रश्न ५ :—"प्रसादजी ने कामायनी में प्रकृति के कोमल और कठोर दोनों ही रूपों का चित्रण किया है।" इस कथन की उद्धरण सहित विवेचना कीजिए।

उत्तरः—मानव प्रकृति के आँगन में जन्म ग्रहण करता है और अपने को चारों ओर से प्रकृति की नैसर्गिक सुषमा से घिरा हुआ पाता है। जैसे-जैसे उसका ज्ञान विस्तृत होता जाता है वैसे-वैसे ही वह प्रकृति की आश्चर्यमयी सुषमा को देखकर विस्मय विमुग्ध हो जाता है। प्रकृति के अनन्य सहवास से मनुष्य यह अनुभव करने लगता है कि प्रकृति में ही मनुष्य के सुकुमार मनोभावों और वृत्तियों के परितोष के लिये समुचित सामग्री है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव को प्रथम काव्य की प्रेरणा प्रकृति से मिली। वैदिक काल से आज तक कवि प्रकृति के अनेकों मनोरम और भव्य चित्र अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करते आये हैं।

हिन्दी साहित्य में यद्यपि प्रकृति चित्रण यत्किंचित सभी कालों में हुआ है किन्तु आलम्बन रूप में अर्थात् शुद्ध रूप में प्रकृति चित्रण छायावाद युग की ही देन है। इस युग के कवियों ने प्रकृति को जड़ नहीं वरन् चेतन माना है। समस्त प्रकृति को सचेतन रूप में देखा है।

छायावाद के प्रमुख उन्नायकों और स्तंभों में प्रसादजी का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। उन्होंने साहित्य अथवा काव्य में प्रकृति के जितने भी प्रयोग प्रचलित हैं उन सभी के सहारे अपने प्रकृति प्रेम की अभिव्यक्ति की है 'चित्राधार' से लेकर 'कामायनी' तक प्रसादजी का काव्य प्रकृति की चेतना से अनुप्राणित है।

प्रसादजी ने प्रकृति के कोमल एवं कठोर दोनों ही रूपों के वर्णन अपने काव्यों में प्रस्तुत किये हैं। प्रकृति के कोमल रूपों के चित्रण में रजनीगन्धा, मलिना, महाक्रीड़ा, एकान्त में, निशीथ नदी, जलविहारिणी, चित्रकूट आदि कानन कुसुम की कविताएँ 'प्रसाद' जी के आरम्भिक काव्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। 'करुणालय' और 'प्रेमपथिक' में भी कुछ अच्छे चित्र मिलते हैं। कोमल प्रकृति के विस्तृत और मनोरम चित्र कामायनी में भी कवि ने बड़ी सुन्दरता पूर्वक चित्रित किये हैं। यथा :—

"स्वर्णशालियों की कलमें थी दूर दूर तक फैल रही।
शरद् इंदिरा के मंदिर की मानों कोई गैल रही।।"

× × ×

"संध्या घनमाला की सुन्दर ओढ़े रंग-बिरंगी छींट।
गगन चुम्बिनी शैल श्रेणियाँ पहने हुये तुषार किरीट।।"

× × ×

धवल मनोहर चन्द्र बिंब से अंकित सुन्दर स्वच्छ निशीथ,
जिसमें शीतल पवन गा रहा पुलकित हो पावन उद्गीथ,
"वह चन्द्रहीन थी एक रात, जिसमें सोया था स्वच्छ प्रात:
उजले उजले तारक झलमल, प्रतिबिम्बित सरिता वक्षस्थल:
धारा वह जाती बिम्ब अटल, खुलता था धीरे पवन पटल:
चुपचाप खड़ी थी वृक्षपाँत' सुनती जैसे कुछ निजी बात।"

भयंकर जल प्लावन के पश्चात् नवल प्रभात का वर्णन भी कितना आकर्षक और मनोरम है :—

उधर मुसहते तीर बरसती,
जय लक्ष्मी सी उदित हुई,
उधर पराजित काल रात्रि भी,
जल में अंतर्निहित हुई।
यह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का
आज लगा हँसने फिर से;
वर्षा बीती, हुआ सृष्टि में
शरद विकास नये सिर से;
धीरे धीरे हिम-आच्छादन
हटने लगा धरातल से,
जगीं वनस्पतियाँ अलसाईं
मुख धोती शीतल जल से।

इसी प्रकार चादनी की उज्ज्वलता पर भी कवि की कल्पना द्रष्टव्य है:—

विकल खिलखिलाती है क्यों तू? इतनी हँसी न व्यर्थ बिखेर।
तुहिन कणों, फेनिल लहरों में मच जावेगी फिर अंधेर॥

जब रात्रि में मेघ आकाश में इधर उधर दौड़ते हैं तो चन्द्रमा उनमें झाँकता और छिपता सा दिखाई पड़ता है। कवि की दृष्टि में मानो रात्रि ही घूँघट में अपना सुन्दर मुख ढाँप लेती है:—

घूँघट उठा देख मुसक्याती, किसे ठिठकती सी आती;
विजन गगन में किसी भूल सी किसको स्मृति पथ में लाती।
रजत कुसुम के नव परागसी, उड़ा न दे तू इतनी धूल।
इस ज्योत्स्ना की अरी बावली, तू इसमें जावेगी भूल॥

चन्द्रमा 'रजत कुसुम सा' है और उसकी चाँदनी नव पराग सी। चारों ओर उसका छिटकना 'धूल' सा उठना प्रतीत होता है। ज्योत्स्ना के इस मादक रूप में स्वयं 'रात' भूली सी लगती है। रात का यह मानवीकरण कितना सजीव हो उठा है।

समुद्र के किनारे की दोड़ी सी पृथ्वी का चित्र भी सुहागरात की स्मृति लेकर सिमटी बैठी मानवती वधू के रूप में प्रस्तुत किया है:—

धसती धरा, धधकी ज्वाला, ज्वालामुखियों के निश्वास।
और संकुचित क्रमशः उसके अवयव का होता था ह्रास।
उधर गरजती सिन्धु लहरियाँ, कुटिल काल के जालों सी।
चली आरही फेन उगलती, फन फैलाये व्यालों सी॥

कितना भयंकर और प्रकम्पित करने वाला दृश्य है। प्रलय का यथार्थ चित्र कवि ने यहाँ अङ्कित कर दिया है। उद्दीपन रूप में भी प्रसाद ने प्रकृति का भरपूर प्रयोग किया है। 'झरना', 'आँसू' और 'लहर' में से भावोद्दीपन के कतिपय उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं :—

"कर गई प्लावित तन-मन सारा, एक दिन तव अपाङ्ग की धारा॥
हृदय से झरना—बह चला, जैसे दृग जल ढरता।
प्रणय वन्या ने किया पसारा, कर गई प्लावित तन-मन सारा॥"
—झरना

"शीतल समीर आता है कर पावन परस तुम्हारा,
मैं सिहर-सिहर उठता हूँ बरसा कर आंसू-धारा।"
—आँसू

"नृत्य-शिथिल बिछली पड़ती है वहन कर रहा उसे समीर।
तब क्यों तू अपनी आँखों में जल भर कर उदास होता,
और चाहता इतना सूना—कोई भी न पास होता!"
—लहर

'प्रसाद' के गीति-काव्य में प्रकृति के ऐसे प्रयोग सर्वत्र दिखाई पड़ते हैं।

रहस्य भावना की अभिव्यक्ति के लिये भी कवि ने प्रकृति का प्रयोग किया है। कामायनी में मनु के शब्दों में देखियेः—

"महानील उस परम व्योम में अंतरिक्ष में ज्योतिर्मान,
ग्रह नक्षत्र और विद्युत्कण जिसका करते हैं संधान।
छिप जाते हैं और निकलते आकर्षण में खिंचे हुये,
तृण वीरुध लहलहे हो रहे किस के रस से सिंचे हुये।

था तथा प्रकृति के नाना रूपों में उनके हृदय का सामञ्जस्य था। उनका निरीक्षण बहुत ही स्पष्ट और अनुभूति बहुत ही सच्ची थी। उन्होंने निश्चय ही प्रकृति वर्णन द्वारा जगत को रसमय सिद्ध कर दिया है।

प्रश्न ६—" 'आँसू' प्रसादजी का विरह प्रधान काव्य है किन्तु उसमें विप्रलंभ शृंगार के अतिरिक्त करुण और शांत रसों का भी मधुर योग हो गया है।" इस कथन की सार्थकता प्रमाणित करते हुये 'आँसू' काव्य की समीक्षा संक्षेप में प्रस्तुत कीजिये।

उत्तर—काव्य-रूप की दृष्टि से 'आसू' न तो प्रबन्ध काव्य ही है क्योंकि इसमें धारावाहिक कथा प्रबल नहीं है और न यह मुक्तक काव्य ही है क्योंकि इसमें मुक्तक काव्य के उपयुक्त छोटी सी सीमा में समाहित होने वाले गीत नहीं हैं। वस्तुतः यह एक विस्तृत कविता है जिसमें वस्तु वर्णन और भाव-व्यंजना दोनों का सुन्दर समन्वय हुआ है। इस अन्विति (unity) का अनुभव प्रत्येक पाठक को होता है। यद्यपि सरिता के जल-प्रवाह की तरह इसमें कोई कहानी नहीं चलती किन्तु इसकी उद्भावनायें, अभिनव कल्पनाएँ और अभिव्यक्ति की अनेकों भंगिमाएँ अत्यत प्रभावान्वित एवं आकर्षक हैं। इस प्रकार हम इस काव्य को गीत प्रबन्ध अथवा मिश्र काव्य कह सकते हैं।

रस और कल्पना की दृष्टि से 'प्रसाद' जी की यह रचना अत्यंत प्रौढ़ एवं गम्भीर है। यद्यपि 'आसू' विप्रलंभ शृंगार का काव्य है किन्तु इसमें करुण रस का योग भी है। कवि ने स्वयं ही दोनों रसों का महत्व बताते हुये लिखा है:—

"शृंगार चमकता उनका, मेरी करुणा मिलने से" अतः हम कवि की इस कृति को 'करुण विप्रलंभ' रस की कृति भी कह सकते हैं। आगे चलकर इसमें शांत रस का मेल भी हो गया है। 'आँसू' के अध्ययन से ज्ञात होता है प्रेमी कवि प्रेम साधना के द्वारा धीरे-धीरे सांसारिक द्वन्द्वों से मुक्त होकर स्थित प्रज्ञ भाव से प्रेम-समाधि में लीन हो गया है।

कवि के इस काव्य में रति-भाव से सम्बन्धित अनेक रमणीय संचारी भावों का सौन्दर्य भी दर्शनीय है। प्रसाद जी ने इस काव्य में नायक के द्वारा नायिका के स्मरण के बहाने रीतिकालीन नख-शिख वर्णन की परम्परा को बड़ी नई .

उस पावन तन की शोभा,
आलोक मधुर थी ऐसी।'

कवि के प्रणयोद्‌गारों को नायिका सुना अनसुना करती रहती थी। इस पर कमल के पत्तों पर से जलकण के फिसल पड़ने के प्राकृतिक तथ्य कथन के सहारे निम्न पंक्तियों में उसका उपालम्भ देखिये :—

"मुख कमल समीप सजे थे
दो किसलय से पुरइन के
जल बिन्दु सदृश ठहरे कब,
उन कानों में दुख किनके।"

यहाँ कवि ने नायिका के मुख को कमल और कानों को कमल-पत्र और अपने दुख पूर्ण प्रणयोद्‌गारों का जल-कण बनाकर रूपक अलंकार का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है।

आँसू काव्य में प्रकृति के कोमल और कठोर दोनों ही रूप ग्रहण किये गये हैं। विषय की कोमलता के अनुरूप कवि ने प्रकृति के सुन्दर, कोमल और सरस तथा लावण्यपूर्ण पदार्थों को ही चयन किया है। प्रकृति का दूसरा महत्वपूर्ण प्रयोग अलंकार-निरूपण में उपमानों के रूप में किया गया है। उदाहरण के लिये निम्न छन्द देखिये :—

प्रकृति का कोमल रूप :—

"हिलते द्रुम-दल कल किसलय,
देती गलबाँही डाली,
फूलों का चुम्बन, छिड़ती—
मधुपों की तान निराली।
मुरली मुखरित होती थी
मुकुलों के अधर विहँसते
मकरन्द भार से दबकर
श्रवणों में स्वर जा बसते।"

'मेरी अनामिका संगिनि !
सुन्दर कठोर कोमलते !'

लाक्षणिक-वैचित्र्य तो आँसू में पदे-पदे प्राप्त है। मानवीकरण का भी एक उदाहरण द्रष्टव्य है :—

"यह हृदय समाधि बना है,
रोती करुणा कोने में।"

करुणा का यह मानवीकरण कितना सजीव एवं चित्र-विधायक है।

भावों को प्रभाव-शाली बनाने के लिये कवि ने अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग किया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास और वक्रोक्ति के प्रयोग ने भाषा को संगीतात्मकता प्रदान करदी है। अर्थालंकारों के प्रयोग में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, मुद्रा आदि अलंकार प्रमुख हैं। अमूर्त के उपमेय के लिये मूर्त और मूर्त उपमेय के लिये अमूर्त उपमान भी अनेक स्थानों पर प्रयुक्त हुये हैं जो कवि की कुशलता के परिचायक हैं। पुराने रूढ़ उपमानों को भी कवि ने नवीन रूप से संजोया है।

'प्रसाद' जी की यह रचना भारतीय वेदान्त, सूफियों की धार्मिक भावना, बंगला, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी काव्य शैलियों तथा संस्कृत, हिन्दी के रीत काव्य की परम्पराओं से थोड़ी बहुत प्रभावित दिखाई देती है। इसमें कल्पना गौण तथा अनुभूति पक्ष प्रधान है।

संक्षेप में आँसू विरह का मार्मिक गीति काव्य है। इन गीतों में प्राचीन विलास की स्मृति से उत्पन्न कसक या पीड़ा की अभिव्यक्ति अत्यन्त मार्मिक बन पड़ी है। आरंभ में आँसू विरही की वेदना के रूप में ही प्रवाहित हुआ पर आगे चलकर उसके उत्तरार्द्ध में कवि की दृष्टि लोक के दुःख की ओर भी उन्मुख हुई है :—

'यह हँसी और यह आँसू,
घुलने दे मिल जाने दे,
बरसात नई होने दे,
कलियों को खिल जाने दे।

चुन-चुन ले रे कन-कन से
जगती की सजग व्यथाएँ
रह जायेंगी कहने को,
जन रंजन करी कथाएँ।"

यही कारण है कि 'आँसू' का अवसान अत्यन्
हुआ है:—

सबका निचोड़ लेकर तुम
सुख से सूखे जीवन में
बरसो प्रभात हिम-कन-सा
आँसू इस विश्व-सदन में।

सुमित्रानन्दन पन्त

परिचयः—पन्त जी का जन्म अल्मोड़ा के कौसानी ग्राम में २० मई सन् १६०० को दिन के आठ-नौ बजे हुआ और छः घण्टे बाद ही उनकी माता का देहान्त हो गया। पन्तजी ने इस सम्बन्ध में लिखा है :—

"नियति ने ही निज कुटिल कर से, सुखद
गोद मेरे लाड़ की थी छीन ली।
बाल में ही हो गई थी लुप्त हा,
मातृ-अंचल की अभय छाया मुझे।

पंतजी के पिता पं० गंगादत्त जमींदार थे। कौसानी राज्य में वे कोषाध्यक्ष थे। इनकी माता का नाम श्रीमती सरस्वती देवी था। पंतजी के चार भाई थे जिनमें वे सबसे छोटे हैं। माँ का देहावसान हो जाने से इनका पालन-पोषण इनकी फूफी ने किया। वे अपने भाई के यहाँ कौसानी में रहा करती थीं। उनका स्वभाव अत्यन्त नम्र एवं उदार था।

पन्त को खेलने-कूदने का शौक नहीं था और न वे किसी से लड़ना झगड़ना ही पसन्द करते थे। वे सदा अपने घर के भीतर एकान्त में बैठे रहते थे।

पन्त को कहानिया पढ़ने का शौक बचपन से ही था। भूतों और राक्षसों की कहानियाँ उन्हें प्रिय थीं। वर्फ की परियों की कहानी तो उन्हें अत्यन्त आनन्ददायक लगती थीं। पन्त को परियों के देखने का बड़ा शौक था किन्तु साथ ही वे उनसे डरते भी थे। उन्होंने अपनी बुआ और दादी से सुन रखा था कि छोटे बच्चों को परिया उड़ा ले जाती हैं। लाल-सफेद रंग के गोल-मटोल पत्थरों को इकट्ठा कर पन्त उनकी पूजा किया करते थे। उन पर फूल, मिठाई आदि चढ़ाया करते थे। घर में स्त्रियों द्वारा गाये हुये गीतों को भी पन्त तन्मयता से सुनते थे।

चार पाँच वर्ष की अवस्था में पंत को गाँव के एक छोटे से स्कूल में पढ़ने भेजा गया। वहाँ उनके फुफेरे भाई अध्यापक थे। पढ़ने में पंत का मन खूब

लगता था। उनके बड़े भाई मेघदूत का हिन्दी
जिसे व बड़े एकाग्रचित होकर सुनते थे। छुटि
थे, जो गजलें सुनाया करते थे। पंत उन गज
थे। गजल की लय से वे पूर्ण परिचित हो गये
उन्होंने भी एक गजल लिख डाली।

नौ वर्ष की उम्र में उन्होंने अपर प्रायमरी (
ली। इसके बाद ग्यारह वर्ष की आयु में इन्हें
में अंग्रेजी पढ़ने के लिये भेजा गया। नवीं कक्षा तक
फिर वे काशी में जयनारायण स्कूल में दाखिल हो गये

पंत के पिता धार्मिक प्रवृत्ति वाले थे। उनकी साधु
पंत पर उनका प्रभाव पड़ा। सन् १९१५ में पंत जी स्व
से अधिक प्रभावित हुये। वहाँ स्वामी जी ने एक हिन्दी
की। इस पुस्तकालय से पंत में हिन्दी के प्रति प्रेम हुआ
भावना प्रस्फुटित हुई।

उस समय पंत 'सरस्वती' में प्रकाशित श्री मैथिली
ताएँ बड़े शौक से पढ़ा करते थे। उनके मन पर गुप्त
का बहुत प्रभाव पड़ा। जिसके फलस्वरूप उन्होंने १५
अपने फुफेर भाई को एक पत्र रोला छन्द में लिखा था।

साधु सन्तों के सम्पर्क से उन्होंने रामायण, महाभारत, ग
आरम्भ कर दिया। इस प्रकार उनका हृदय एक ओर
भावनाओं की ओर आकृष्ट हुआ तो दूसरी ओर साहित्य की ओ

पंत की सबसे प्रथम कविता 'अल्मोड़ा अखबार' में सन् १९
शित हुई। उन्हीं दिनों 'सुधारक' नाम की एक हस्तलिखित
जिसमें पंत की रचनाएँ प्रकाशित होने लगीं। इसी समय उन्होंने
उपन्यास लिखा जो प्रकाशित नहीं हुआ। सन् १९
सन् १९२० में इलाहाबाद के
पं० शिव

सन् १९२१ में असहयोग आन्दोलन आरम्भ हुआ। पंतजी उस समय आई० ए० के आखिरी साल के विद्यार्थी थे। गांधीजी के भाषणों से प्रभावित होकर उन्होंने अनेक विद्यार्थियों के साथ कालेज छोड़ दिया। कुछ दिन के बाद पंत राजनीति से हट आये और प्रो० शिवाधार पाण्डेय से प्रेरणा ग्रहण कर पुनः हिन्दी, अंग्रेजी और संस्कृत साहित्य का अध्ययन करने लगे। सन् १९२२ में उनकी 'उच्छ्वास' कविता प्रकाशित हुई फिर उनकी 'बादल' कविता सामने आई। इस कविता ने उन्हें साहित्यिकों के हृदय में स्थान दिला दिया।

सन् १९२४ से २८ तक पंत पारिवारिक संकटों में रहे जिससे वे इस बीच कुछ न लिख सके। सन् १९३० में उन्होंने कुछ कहानियाँ लिखीं जो 'मधुवन' नाम से प्रकाशित हुईं। कुछ काल बाद वे अल्मोड़ा लौट आये। इस समय उनकी मित्रता कालाकांकर राज्य के महाराज के छोटे भाई सुरेशसिंह से हो गई। उनके अनुरोध पर पंतजी सन् १९३० से १९३३ तक कालाकांकर में रहे। वहाँ उन्होंने मार्क्सवाद का अध्ययन किया। 'गुंजन' और 'ज्योत्स्ना' की रचना यहीं हुई। उनकी १९३४-३५ में लिखी गई कविताएँ 'युगान्त' नाम के संग्रह में हैं। 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' की रचना सन् १९४५-४६ में हुई। उत्तरा का प्रणयन उसके बाद हुआ। इधर उनका गीति-नाट्य 'शिल्पी' भी प्रकाशित हुआ है। आजकल पंत आल इण्डिया रेडियो इलाहाबाद में हिन्दी कार्यक्रमों का संचालन और निर्देशन कर रहे हैं।

पंतजी की रचनाएँ—यद्यपि पंतजी ने गद्य और पद्य दोनों में ही अपनी विविध प्रकार की रचनाएँ हमें दी हैं किन्तु मूलतः वे कवि ही हैं। उनके काव्य ग्रंथ निम्नानुसार हैं:—

खण्ड काव्य :—ग्रन्थि।

रूपक :—ज्योत्स्ना, रजत शिखर, शिल्पी, उत्तर-शती।

मुक्तक काव्य :—उच्छ्वास, वीणा, पल्लव, गुंजन, युगान्त, युगवाणी ग्राम्या, स्वर्ण धूलि, स्वर्ण किरण, युगपथ, उत्तरा, अतिमा और वाणी।

संकलन :—पल्लविनी, आधुनिक कवि, रश्मि-बंध और चिदाम्बरा।

इन रचनाओं के अतिरिक्त पंतजी ने उमर खय्याम की रुबाइयों का हिन्दी रूपान्तर किया है जो 'मधु ज्वाला' के नाम से प्रसिद्ध है।

पन्त की प्रतिमा का क्रमिक विकास :—श्री मैथिलीशरण गुप्त का प्रभाव पंतजी पर विशेष रूप से पड़ा था। फलस्वरूप वे अपने काव्य के प्रारम्भकाल में हरिगीतिका, रोला, वीर इत्यादि छन्दों में कविता लिखा करते थे। रचनायें अधिकतर वर्णनात्मक और प्रकृति सम्बन्धी हुआ करती थीं। कुछ काल बाद कविता का विषय क्षेत्र व्यापक हुआ 'तम्बाकू का धुआँ' 'कागज कुसुम' उनकी इसी काल की रचनायें है। पंत जी की रचनाओं को क्रमानुसार इस प्रकार लिया जा सकता है :—

वीणा :—इसका रचना काल सन् १६१८-२० माना जा सकता है। यह पंत जी की रचनाओं का प्रथम प्रकाशित संग्रह है। इस संग्रह की कवितायें सरस, सरल और स्पष्ट हैं। कवि की आत्मव्यंजना शैली आकर्षक है। वीणा की कविताओं पर विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ तथा सरोजनी नायडू का प्रभाव पड़ा है। इस संग्रह में प्रकृति रूपों का विशेषरूप से अपनाया गया है।

ग्रन्थि :—यह एक कथात्मक प्रणय काव्य है। इसमें कवि ने प्रणयवेदना का बड़ा ही मार्मिक एवं सुन्दर चित्रण किया है। कलापक्ष इस काव्य में विशेषरूप से नहीं निखरा यद्यपि उसका बहुत सौष्ठवपूर्ण रूप इसमें मिलता है। सौन्दर्य के चित्रण में कला बहुत कुछ उभर आई है। इसकी भाषा प्रवाहमयी है। जहाँ तहाँ मुहाविरों का सुन्दर प्रयोग भी किया गया है। पंत जी की यह एक सफल रचना है।

पल्लव—इसमें कवि की दृष्टि विशेषतः प्रकृति की ओर उन्मुख हुई है। वैसे इसमें विरह प्रधान और चिन्तन प्रधान रचनाओं की भी कमी नहीं है। प्रकृति वर्णन में बादल, वीचि, वसन्त, नक्षत्र, पवन आदि रूपों को ग्रहण किया गया है। 'परिवर्तन' इस ग्रन्थ की महत्वपूर्ण कविता है। इसके अतिरिक्त उच्छ्वास और आँसू दो रचनाएँ भी अपना विशेष महत्व रखती हैं। पल्लव की कुछ कवितायें रहस्यवादी हैं। जैसे मुस्कान, मौन निमंत्रण आदि।

गुंजन—इसमें कवि अधिक चिन्तनशील दिखाई पड़ता है। यहाँ इसकी निराशा और वेदना चिन्तन की कसौटी पर आकर निखर उठी है और कवि को जीवन का आशावादी एवं समन्वयात्मक पक्ष दिखलाई पड़ा है। गुंजन का कवि सुख दुख दोनों को समान महत्व देता है। गुंजन तक आकर कवि लोक

कवि मानववादी हो गया है। इस संग्रह में सामाजिक समस्यायें रखी गई हैं। प्रणय सम्बन्धी कवितायें भी स्वर्ण धूलि में संग्रहीत हैं।

उत्तरा—इसमें कवि का दार्शनिक तथा विचारक रूप प्रमुख हो गया है। इसमें कवि का चिन्तन पराकाष्ठा पर पहुँच चुका है।

पंतजी की उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त 'मधु ज्वाल', 'युगान्तर' और 'खादी के फूल' ये तीन रचनायें और हैं। 'मधु ज्वाल' में उमर खय्याम की रुबाइयों का अनुवाद किया है। 'युगान्तर' महात्मा गांधी के प्रति कवि की श्रद्धाञ्जलि है। 'खादी के फूल' में पंत और बच्चन की कवितायें हैं। प्रथम १५ कवितायें पंतजी की हैं जो राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत हैं। संक्षेप में पंत की रचनाओं का यही विकास क्रम है।

पंत जी के काव्य का भावपक्ष

रस योजना—पंतजी सुकुमार भावों के कवि हैं। उन्होंने भावों के माध्यम से रस की सृष्टि की है। उनका लक्ष्य रसोत्पत्ति की अपेक्षा अपने अन्त प्रदेश के भावों की व्यंजना पर ही विशेष अवलम्बित रहा है। उनकी कविताओं में प्रायः चार रस पाये जाते हैं—शृङ्गार, अद्‌भुत, करुण और शान्त। शेष रसों के लिये इनकी कविता में स्थान नहीं है।

पंत ने शृंगार रस के दोनों पक्षों (संयोग और वियोग) को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। 'ग्रन्थि' एक छोटा सा प्रेम काव्य है जिसमें विफल-प्रणय हृदय की बड़ी ही मार्मिक वेदना है। इसलिये कवि को रति के संयोग और वियोग के चित्रण में काफी सफलता मिली है। प्रथम मिलन का चित्र देखिये—

> इन्दु पर, उस इन्दुमुख पर साथ ही
> थे पड़े मेरे नयन, जो उदय से,
> लाज से रक्तिम हुवे थे, पूर्व को
> पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था,
> एक पल मेरे प्रिया के दृग पलक
> थे उठे ऊपर सहज, नीचे गिरे

वासना से इस निर्झर-पुलक में
दृढ़ किया मानो प्रणय सम्बन्ध था।

यहाँ नायिका आलम्बन, उसका सौन्दर्य उद्दीपन, नायिका का निर्निमेष भाव, लज्जा आदि संचारी भाव तथा रति स्थायी भाव है। अब वियोग का भी चित्र देखिये—

हाय मेरे सामने ही प्रणय का
ग्रन्थि बन्धन हो गया, वह नव-कुसुम
मधुप-सा मेरा हृदय लेकर, किसी
अन्य मानस का विभूषण हो गया।

पंत के ग्रन्थ-गीता में भी शृङ्गार रस का अच्छा परिपाक हुआ है।

पंत की कविताओं में हास्यरस अत्यल्पमात्रा में स्फुरित हुआ है। अद्भुत रस की योजना अवश्य ही कुछ स्थलों पर हो पाई है। यथा:—

निखिल कल्पनामयि अयि अप्सरि।
अखिल विस्मयाकार।
अकथ अलौकिक, अमर अगोचर
भावों की आधार।
गूढ़ निरर्थ, असंभव, अस्फुट
भेदों की शृङ्गार।
मोहिनि, कुहकिनि, छल-विभ्रममयि
चित्र—विचित्र अपार।

इसके स्थायी भाव आश्चर्य, आलम्बन, अप्सरा और कुहुक का वातावरण उद्दीपन, जिज्ञासा संचारी भाव के रूप में अभिव्यक्त है।

पंत की परिवर्तन शीर्षक कविताओं में करुण, वीर, रौद्र, भयानक, वीभत्स एवं शान्त रस की पूर्ण योजना हुई है। रौद्र रस का उदाहरण देखिये:—

अरे निष्ठुर परिवर्तन !
तुम्हारा ही ताडव नर्तन
विश्व का करुण विवर्तन

निखिल उत्थान पतन !
अहे वासुकि सहस्रफन !
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरन्तर।
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षस्थल पर
शत-शत फेनोच्छ्‌वसित, स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अंबर।
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत कंचुक कल्पान्तर,
अखिल विश्व ही विवर,
वक्र कुन्डल
दिङ्‌ मन्डल।

पंत की कविता में शांत रस की अधिकता है। शांत रस वहीं होता है जहाँ सुख, दुख, द्वेष, मात्सर्य आदि भाव नहीं होते और समस्त प्राणियों में जहाँ समान भाव रहता है। यथाः—

जग पीड़ित रे अति सुख से
जग पीड़ित रे अति दुख से
मानव जग में बँट जावे
दुख सुख से और सुख दुख से।

कवि की नौका विहार कविता में भी शांत रस देखिये—

हे जग जीवन के कर्णधार ! चिर जन्म-मरण के आर पार
शाश्वत जीवन नौका विहार।
मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण
करता मुझको अमरत्व दान।

इनके अतिरिक्त 'नित्य जग', 'अनित्यजग' 'तप' 'सुख-दुख 'चांदनी' 'ताज' आदि कविताओं में भी शांत रस का अच्छा परिपाक हुआ है।

प्रकृति वर्णन—काव्य की प्रेरणा पंत को प्रकृति से ही मिली है। उन्होंने प्रकृति पर सबसे अधिक लिखा है। एक-एक विषय को उन्होंने विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा और वे उसकी अन्तरात्मा तक पहुँच गये हैं। प्रकृति दर्शन की साहित्य में जितनी भी विधायें हैं पंत ने उन सबका उपयोग अपनी रचनाओं में किया है

इसका मुख्य कारण है उनकी प्रकृति प्रियता। प्रकृति के प्रति उनका सहज-स्नेह है। वातावरण भी उन्हें इसी प्रकार का मिला। अपने प्रारंभिक काल में ही उन्होंने प्रकृति को अपनी सर्वप्रिय वस्तु माना। प्रकृति सौन्दर्य के आगे नारी सौन्दर्य तक की उन्होंने उपेक्षा की। उनकी 'मोह' कविता देखिये:—

> "छोड़ द्रुमों की मृदु छाया।
> तोड़ प्रकृति से भी माया
> बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन
> भूल अभी से इस जग को।"

'वीणा' पंत की प्रथम रचना है। इसमें प्रकृति के अनुसरण तथा उससे तादात्म्य होने की भावना प्रधान है। पहले कवि को प्रकृति के प्रति कौतूहल होता है। उसके साथ निरंतर रहने से उससे स्नेह हो जाता है। फिर कवि उसके गुणों पर मुग्ध होता है। धीरे-धीरे उसका स्नेह तीव्रता ग्रहण करता है। फलस्वरूप कवि अपनी आत्मा और प्रकृति की आत्मा को एक रूप देखने लगता है। 'पल्लव' में प्रकृति स्वतंत्र विषय बनकर उपस्थित हुई है। कवि ने प्रकृति की एक-एक वस्तु के लिये अनेक कल्पनाएँ की हैं। 'गुंजन' में कवि जीवन की ओर बढ़ा है। प्रकृति के माध्यम से कवि ने आध्यात्मिक भाव अथवा जीवन दर्शन सम्बन्धी विशिष्ट विचारों की अभिव्यक्ति की है। 'युगान्त' की प्रकृति पर मानवतावाद का प्रभाव है। यहाँ कवि नवजीवन, नवचेतना एवं नवीन सृष्टि के लिये आकुल दिखाई देता है। 'ग्राम्या' और 'युगवाणी' में भी कवि की दृष्टि प्रकृति की अपेक्षा मानव पर केन्द्रित है। 'ग्राम्या' में कवि ने जहाँ गाँव की प्रकृति के चित्र खींचे हैं वहाँ वह जनभावना के बहुत निकट आता हुआ दिखाई देता है। 'स्वर्णकिरण' में प्रकृति संबंधी कविताओं के वर्ण्य विषय हिमालय, समुद्र, सूर्य, कौआ आदि हैं। यहाँ कवि विराट् कल्पनाओं का प्रेमी हुआ दिखाई देता है। 'स्वर्णधूलि' में अपेक्षाकृत प्रकृति के चित्र थोड़े हैं। उद्दीपन रूप में कुछ चित्र प्राप्त होते हैं। 'उत्तरा' की प्रकृति सम्बन्धी रचनाओं में शांत और पवित्र वातावरण अंकित है। यहाँ कवि प्रकृति के बाह्य रूप से अधिक उसकी अंतरात्मा का चिंतन करने के लिये आकुल है। 'उत्तरा' में भी मानव की मुखरता हो गई है। प्रकृति मानो मानव की उपासिका के रूप में है। परन्तु इन

देखते हैं कि पंत की काव्य भावधारा का विकास प्रकृति से मानव की दिशा में हुआ है। आरम्भ में कवि ने प्रकृति की पूजा की और अंत में वह प्रकृति से मानव की पूजा कराता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि पंत ने प्रकृति को विभिन्न रूपों में अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। प्रकृति प्रेम कवि के संस्कारों में समाविष्ट है। प्रकृति के प्रति उसका दृष्टिकोण अत्यंत स्वस्थ एवं नैसर्गिक है। 'उत्तरा' में एक स्थान पर कवि की प्रकृति में खो जाने की भावना प्राप्त होती है—

"तुम मुझे डुबालो अपने में,
या मुझमें जाओ स्वयं डूब,
तुम फूटा मेरा मोह चीर,
ज्यों बढ़ती भू को चीर दूब,।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति के प्रति कवि का अपार मोह है। उसका उससे चिर सम्बन्ध है।

पंतजी के काव्य का कला पक्ष पक्ष—

भाव पक्ष की भाँति पंतजी का कलापक्ष भी पूर्ण एवं समुन्नत है। कवि में कलात्मक सौष्ठव उनके प्रारंभिक काव्य काल से ही दिखाई देता है। कला के प्रति पंतजी सदैव जागरूक रहे हैं। उनकी काव्य प्रतिभा के क्रमिक विकास का अवलोकन करने से पता चलता है कि पंतजी निरन्तर विचारशील होते गये हैं और उनकी कला में अनुकूल सूक्ष्मता आती गई है। हम यहाँ उनके कलापक्ष के एक एक अवयव पर संक्षेप में विचार करेंगे।

कल्पना प्रवणता—छायावादी काव्य में कल्पना प्रवणता पर्याप्त रूप में प्राप्त होती है। छायावादी युग में कवि को भावुकता और संवेदना को स्वच्छंद रूप से विचरण करने का अवसर प्राप्त हुआ। इसी आधार पर उसकी कल्पना भी मुक्त रूप से उड़ानें लेने लगी। कल्पना की मुक्त उड़ान के कारण इस युग की कविता में सौन्दर्य का आविर्भाव हुआ और कविता नये दृश्यों से युक्त हो गई।

कवि पंत की कल्पना का क्षेत्र इस दृष्टि से बहुत व्यापक और समृद्ध है।

'बादल' शीर्षक कविता में उनकी कल्पना का उन्मुक्त विका...
है। उनकी यह कविता विराट कल्पनाओं से समन्वित है।
उदाहरण के लिये :—

"कभी अचानक भूतों का सा
प्रकटा विकट महा आकार
कड़क-कड़क जब हँसते हम सब
थर्रा उठता है संसार।"

कभी मेघ प्रलय बाढ़ के समान हो जाते हैं :—

अनिल विलोड़ित गगन सिन्धु में
प्रलय बाढ़ से चारों ओर
उमड़-उमड़ हम लहराते हैं
बरसा उपल, तिमिर घनघोर।

इस कविता में कवि ने मेघों को कभी जम्बालजाल के तुल्य...
समस्त इन्द्र की सेना के तुल्य, तो कभी विशाल मकड़ी के जाल के...
...ल्पित किया है। इसी प्रकार कल्पना की सुकुमारता 'वायु के प्रति' क...
...प्त होती है। वायु का चित्रण कवि ने अप्सरा के रूप में किया है। 'ना...
...ी की बूँदें' आदि कविताओं में भी कवि की कल्पना प्रगणता दे...
...कती है।

...प्रतीकात्मकता—कविवर पंत की कविताओं में प्रतीकों का प्रयोग प्रचु...
मात्रा में हुआ है। उनका सबसे प्रिय प्रतीक 'स्वर्ण' है जो सौन्दर्य और समृद्धि...
का द्योतक है। मधुप को पंत ने कहीं प्रेमी माना है और कहीं गायक। चाँदनी...
कवि के लिये सरलता का प्रतीक है और उषा प्रेम की। मुकुल को कवि ने...
सौन्दर्य का और बच्चों के मन को भोलेपन का प्रतीक माना है। इसी प्रकार...
प्रकाश कवि के लिये जागृति और ज्ञान का प्रतीक है और लहर जीवात्मा की...
प्रतीक है। एक उदाहरण देखिये :—

"जग के उर्वर आँगन में
बरसो ज्योतिर्मय...

"यही तो है बचपन का हास
लिये यौवन का मधुर विलास"
"नीरव तार हृदय में
गूँज रहे हैं मंजुल लय में
अनिल पुलक से अरुणोदय में।"

यहाँ कवि ने प्रकाश को ज्ञान और जागृति का प्रतीक माना है। इसी प्रकार सुमन, कलिका, हिमकण, निशा, तम, प्रभात आदि को भी पंतजी ने अनेक स्थलों पर प्रतीक रूप में प्रयुक्त किया है।

अप्रस्तुत योजना—अप्रस्तुत योजना में प्रस्तुत अर्थ प्रमुख और अप्रस्तुत गौण होता है। पंतजी की कविता में रमणीय अप्रस्तुतों की सुन्दर योजना हुई है। चाँदनी, स्वर्ण, कमल, लहर, कली, कुसुम, लता, प्रभात, संध्या, उषा, किरण आदि उनकी कविता में आते रहते हैं। पक्षियों में पिक, चातक, मयूर आदि पंतजी को विशेष प्रिय हैं।

पंत के अप्रस्तुतों में वर्ण-साम्य, प्रभाव-साम्य और रूप-साम्य का विशेष ध्यान रहता है। निम्न छन्द देखिये इसमें अश्रु तथा नेत्रों के वर्णों (श्वेत, श्याम, रतनार) का चित्रण करते हुये कवि ने गहरे, धुँधले, धुले, साँवले मेघों को अप्रस्तुत के रूप में प्रस्तुत किया है :—

"मेरा पावस ऋतु सा जीवन।
गहरे धुँधले सावले
मेघों से मेरे भरे नयन।"

इसमें कवि के वर्ण निरीक्षण का पता चलता है। रूप साम्य को लेकर भी कवि पंत ने अप्रस्तुत विधान किया है :—

"मृदु मन्द-मन्द मंथर मंथर, लघुतरणि हंसिनी सी सुन्दर
तिर रही खोल पालों के पर।"

नौका के पाल खुले हैं। वह जल पर तैरती हुई हंसनी के समान शोभित हो रही है। कहीं-कहीं कवि ने परम्परागत अप्रस्तुतों को भी अपनाया

है। निम्न कविता में कवि ने ग्राम युवती के उरोजों को देखा है :—

"सरकाती पट,
खिसकाती लट,
शरमाती झट,
वह नमित दृष्टि से देख उरोजों के युग घट।"
"जब जल से भर भर भारी गागर,
खींचती उबहनी वह, बरबस।
चोली से उभर-उभर कसमस,
खिचते संग युग रस भरे कलश।"

स्तनों को उपमा कलश से देना एक परम्परा रही है। मूर्त [illegible]
जैसे अमूर्त-अप्रस्तुत तथा अमूर्त-प्रस्तुत के लिये मूर्त-अप्रस्तुत की योज[illegible]
की काव्य की एक प्रमुख विशेषता है। पंतजी ने मूर्त-प्रस्तुत के लि[illegible]
[illegible]प्रस्तुत बड़े ही सुन्दर ढंग से अपनी रचनाओं में योजित किये [illegible]
उदाहरण देखिये :—

"गिरिवर के उर से उठ उठकर
उच्चाकांक्षाओं से तरुवर
हैं झांक रहे नीरव नभ पर
अनिमेष अटल, कुछ चिन्ता पर।"

यहाँ [illegible] उच्च आकांक्षाओं के समान उठे हुये हैं।

चमत्कार योजना :—अप्रस्तुत कविता के साधन हैं साध्य नहीं। [illegible]

[illegible]

कवि पंत ने अधिकतर साम्यमूलक अलंकारों का ही प्रयोग किया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा पर इनका अधिकार है। इन साम्य मूलक अलंकारों का प्रचुर प्रयोग करने का एक कारण यह भी प्रतीत होता है कि इनके भाव स्पष्ट करने एव उसे अनुभूतिगम्य बनाने से पर्याप्त सहायता मिलती है। वैसे पंत के काव्य में अनुप्रास, यमक, श्लेष, स्मरण, सन्देह, उल्लेख, दृष्टान्त, व्यतिरेक, समासोक्ति, अप्रस्तुत प्रशंसा, यथासंख्य, रूपकातिशयोक्ति, अर्थान्तरन्यास, विरोधाभास, एकावली, प्रतीप, मानवीकरण आदि अलकारों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। स्थानाभाव से कुछ अलंकारों के उदाहरण ही यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं :—

अनुप्रासः—"तरणि के ही ताल तरग से
तरिण डूबी थी हमारी ताल में।"

यमकः— "श्रवण तक आ जाती है मन
स्वय मन करता बात श्रवण।"

श्लेषः— समुद्र पैरते शुचि ज्योत्सना में
पकड़ इन्दु के कर सुकुमार

उपमाः— "कहो कौन हो दमयन्ती सी
तुम तरु के नीचे सोई
हाय तुम्हें भी त्याग गया क्या
अति नल सा निष्ठुर कोई।"

रूपकः— "शिखर पर विचर मरुत रखवाल
वेणु में भरता था जब स्वर।"
"सोई थी तू स्वप्न नीड़ में।"

उत्प्रेक्षा :—"तुम्हारा ही मुख हास तरंग
आज बौरे भौंरे सहकार
चुनाती नित लवंग निज अंग
तन्वि ! तुमसी बनने सुकुमार।"

श्लेष :—"यही टर टर में प्रेमोच्छ्वास
काव्य में रस, कुसुमों में वास
अचल तारक पलकों में हास
लोल लहरों में लास ।"

दृष्टान्त :—"सुख-दुख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरण
फिर घन में ओझल हो शशि
फिर शशि से ओझल हो घन"।

अर्थान्तरन्यास :—"मूँदती नयन मृत्यु की रात
खोलती नव जीवन की प्रात
शिशिर की सर्व प्रलयकर वात
बीज बोती अज्ञात ।
म्लान कुसुमों की मृदु मुस्कान
फलों में फलती फिर अम्लान
महत है अरे आत्म बलिदान
जगत केवल आदान प्रदान ।"

विरोधाभास :—"तुम माँसहीन तुम रक्तहीन
हे अस्थि शेष तुम अस्थि हीन
तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल
हे चिर पुराण, हे चिर नवीन ।"

इस प्रकार पंतजी की रचनाओं में अलंकारों का बड़ा ही स्वाभाविक ए
सफल प्रयोग हुआ है । इन अलंकारों के अतिरिक्त अपन्हुति, सहोक्ति, परिकर,
विभावना, निदर्शना, विषम, सम, काव्यलिंग, परिसंख्या, अत्युक्ति, तद्गुण,
स्वभावोक्ति आदि अलंकारों के उदाहरण भी पंत की रचनाओं में से दिये जा
सकते हैं ।

छन्द विधान :—छन्द कविता का कलेवर है । इसके अन्तर्गत आकर
व साकार हो जाता है । कवि पंत की रचनाओं में छन्दों की विविधता एवं

विचित्रता के दर्शन होते हैं। उनकी कविताओं के छन्द मात्रिक हैं वार्णिक नहीं लेकिन वे कविता के प्रत्येक चरण को समान मात्राओं में रखने के पक्ष में नहीं हैं। उदाहरण के लिये उनकी 'उच्छ्वास', 'आँसू' और 'परिवर्तन' शीर्षक कवितायें देखिए। इन कविताओं में प्रत्येक चरण की मात्राओं में स्वच्छन्दता-पूर्वक परिवर्तन किये हैं। कभी एक चरण के बाद या कभी दो चरणों के बाद मात्राओं में घटाव-बढ़ाव किया है :—

> हाय ! मेरा जीवन = ११ मात्रा
> प्रेम औ' आँसू के कण = १३ मात्रा
> आह मेरा अक्षय धन = १३ मात्रा
> अपरिमित सुन्दरता औ' मनन = १५ मात्रा
> एक वीणा की मृदु झंकार ! = १६ मात्रा
> कहाँ है सुन्दरता का पार ! = १६ मात्रा
> तुम्हें किस दर्पण में सुकुमारि = १६ मात्रा
> दिखाऊँ मैं साकार ! = १२ मात्रा

इन पंक्तियों में पाँच भिन्न प्रकार के छन्द मिलते हैं। एक उदाहरण और देखिये :—

> बूँद पलकों में प्रिया के ध्यान को। = १६ मात्रा
> थाम ले अब हृदय ! इस आह्वान को। = १६ मात्रा
> त्रिभुवन की भी तो श्री भर सकती नहीं। = २१ मात्रा
> प्रेयसी के शून्य पावन स्थान को। = १६ मात्रा

इसमें पहले, दूसरे और चौथे चरण में पीयूष वर्षी छन्द है, केवल तीसरे चरण में २१ मात्रा हैं। इस प्रकार का मिश्रित छंद पहले भी लिखा जाता था, पर मात्राओं में अन्तर किसी नियम के आधार पर किया जाता था, लेकिन आज इस सम्बन्ध में कोई निश्चित नियम नहीं है। यही कारण है कि कवि ने इसे स्वच्छंदवाद की संज्ञा प्रदान की है।

स्वच्छंद के कलात्मक प्रयोग के सम्बन्ध में पन्त के कुछ निश्चित सिद्धान्त हैं। वे विशेष छंदों को विशेष रसों में प्रयुक्त करते हैं। करुण रस की अभिव्यक्ति

के लिये वे वैतालीय, मालिनी, पीयूष-वर्षण, रूपमाला, सखी, प्लव
हरिगीतिका को एवं शृंगार रस के लिये राधिका, शान्त रस के लि
अरिल्ल तथा वीर रस के लिये रोला छंद का उपयुक्त मानते हैं। अ
छन्दों में परिवर्तन ध्वनि अथवा नाद सौन्दर्य को अस्वाकार करते हैं
अभिव्यक्ति की सुविधा के लिये ही पन्तजी ने मात्रिक छन्द अपनाये ताकि
के अनुकूल उनकी मात्राओं में घटा बढ़ी की जा सके।

कुछ कविताओं में पन्तजी ने अँग्रेजी छन्द सानेट की सी चौदह पंक्ति
की शैली का प्रयोग किया है। 'ताज' और '१६४०' उनकी ऐसी ही कविता
हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि पन्त के छन्द प्रगतिशील हैं, विधसंन्मुख हैं
उनके छन्दों में सर्वत्र एक प्रकार की स्वाभाविक लय होती है और वे भावों क
गति के अनुरूप चलते हैं जिससे उनके छन्दों में स्वाभाविकता बनी रहती है।

भाषा :—पंत जी ने भावों की उच्चता, पूर्णता तथा सुन्दरता के अनुरूप
ही अपनी भाषा का निर्माण किया। उनकी भाषा बोधगम्य, चित्रमय एवं
सस्वर है जिसके कारण उनके काव्य में हृदयहारिता अधिक तीव्र हो गई है।
काव्य भाषा के सम्बन्ध में कवि पंत ने स्वयं लिखा है :—

"भाषा संसार का नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है। यह विश्व की
हृत्तंत्री का झंकार है जिसके स्वर में वह अभिव्यक्ति पाता है। विश्व की
सभ्यता के विकास तथा ह्रास के साथ वाणी का भी युगपत विकास तथा ह्रास
होता है। भिन्न-भिन्न भाषाओं की विशेषताएँ भिन्न-भिन्न जातियों तथा देशों की
सभ्यता की विशेषताएँ हैं। संस्कृत की देव वीणा में जो आध्यात्मिक संगीत की
परिपूर्णता है वह संसार की अन्य शब्द तन्त्रियों में नहीं और पाश्चात्य साहित्य
के विशद रंगालय में जो विज्ञान के कल पुर्जों की विचित्रता बारीकी तथा सज
धज है वह हमारे भारतीय भवन में नहीं।"

पंतजी के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि उन्हें पाश्चात्य साहित्य की भाषा
की विदग्ध सूक्ष्मता के प्रति मोह है, साथ ही भारतीय भाषा की दिव्यता और
पवित्रता भी उन्हें अपने स्नेह-पाश में आबद्ध किये है।

पन्तजी की भाषा तत्सम प्रधान है तथा उसमें संस्कृत से प्राप्त अविकृत
शब्दों का सुन्दर तथा संगत प्रयोग हुआ है। संस्कृत के अप्रचलित शब्दों जैसे

अरन्तहु, व्रतति, प्रतति, द्विरद, स्वेष, प्रतनु, स्थाणु आदि के प्रयोग भी उनकी भाषा में मिलते हैं। कारे, बिकरारे, बादर, हुलास, चहुँ दिशि आदि ब्रज के शब्द भी उन्होंने अपनी रचनाओं में ग्रहण किये हैं। कहीं-कहीं फारसी और अंग्रेजी शब्द भी इनकी रचनाओं में मिलते हैं। यथा :—नादान, सलाम, जवान, मजलिस, मसखरा, अचानक मैंएडीटफ्ट, नैशनरम, फिल बास्केट, डाली ड्राफ आदि। मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग भी पंतजी की भाषा में मिलते हैं।

कवि पन्त ने कुछ शब्दों का निर्माण भी किया है और इन्हें विकृत भी कर दिया है। रुचिमान, तरुण तम, अनिर्वच, खिगार, ऐंचीला, अपनाव आदि ऐसे ही शब्द हैं। संक्षेप में कह सकते हैं कि कवि पन्त की भाषा समृद्ध और वैभवपूर्ण है। भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार है। संगीतात्मकता उनकी भाषा का प्रमुख गुण है।

आलोचनात्मक प्रश्नोत्तर

प्रश्न १—भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से पंतजी के काव्य की सम्यक् आलोचना कीजिये।

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर पाठ के आरम्भ में दी हुई सामग्री में निहित है। अतः उसका अनुशीलन कीजिये।

प्रश्न २—पंतजी के काव्य को जिन प्रभावों एवं परिस्थितियों ने प्रभावित किया है उनका उल्लेख कीजिये।

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर पाठ के आरम्भ में पढ़िये।

प्रश्न ३—पंतजी के प्रकृति चित्रण की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए एक लेख प्रस्तुत कीजिये।

उत्तर—छायावादी काव्य में प्रकृति एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में आई। पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी वर्मा ने इसे अपने-अपने ढंग से सजाया, अपने-अपने दृष्टिकोण से निहारा। प्रसाद के प्रकृति चित्रण में वैभव तथा विलास की भव्यता है और निरालाजी की वाणी में पौरुष तथा चिन्तन का प्राधान्य होने से उनके प्रकृति चित्रण में दार्शनिक गरिमा और ओजपूर्ण

भनता है। महादेवी की कविता में प्रकृति उनकी श्रृंगार भावना की
के रूप में प्राप्त होती है। प्रकृति उनके प्रेम की अनुचरी है। उन्होंने प्र
चित्रण उद्दीपन रूप में अधिक किया है। प्रतीक के रूप में भी प्रकृ
प्रसंग उनकी रचनाओं में मिलता है।

कविवर पंत की दृष्टि इन सबसे भिन्न विशेष रही है। प्रकृति को लेक
वे विशेष तौर से यौवन के स्तर में चले और न चिन्तन के स्तर में ही। उ
काव्य में प्रकृति, प्रेम तथा चिन्तन ये तीनों भाव सामग्रियाँ अलग-अलग स्त
रूप में दिखाई पड़ती हैं। पंत का शैशव प्रकृति के कुंज में ही खेला था
प्रकृति ने ही उन्हें उँगली पकड़कर चलना सिखाया, उन्होंने उनके यौवन में
गुदगुदी पैदा की। अतः पंत का स्वर भी प्रकृति निहार कर फूट उठा। इस
सम्बन्ध में पंतजी के विचार उनके ही शब्दों में यहाँ उद्धृत कर देना समी-
चीन होगा—

"कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति-निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्म भूमि कूर्मांचल प्रदेश को है। कवि-जीवन से पहले भी मुझे याद है मैं घंटों एकान्त में बैठा प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौंदर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था। जब कभी मैं आँखें मूँदकर लेटता था तो वह दृश्यपट, चुपचाप मेरी आँखों के सामने घूमा करता था × × × और यह शायद पर्वत प्रान्त के वातावरण ही का प्रभाव है कि मेरे भीतर विश्व और जीवन के प्रति एक गंभीर आश्चर्य की भावना, पर्वत की तरह निश्चय रूप से अवस्थित है। × × × मेरा विचार है कि 'वीणा' से 'ग्राम्या' तक मेरी सभी रचनाओं में प्राकृतिक सौन्दर्य का प्रेम किसी न किसी रूप में वर्तमान है।

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन!"

दि वीणा के चित्रण प्रकृति के प्रति मेरे अगाध मोह के साक्षी हैं।"

उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि पंत प्रकृति के अनन्य प्रेमी

हैं। उन्होंने प्रकृति पर सर्वाधिक लिखा। एक-एक विषय को अनेक दृष्टिकोणों से देखा और उसकी आत्मा तक जा पहुँचे।

कविता में प्रकृति वर्णन अनेक रूपों में प्राप्त होता है। उनमें से कुछ प्रमुख रूप लेकर पंतजी के प्रकृति वर्णन पर यहाँ संक्षेप में विचार किया जा रहा है:—

संश्लिष्ट चित्रण—संश्लिष्ट चित्रण में प्रकृति के एक सम्पूर्ण वातावरण का चित्रण होता है। यह चित्रण प्रमुखतः दो प्रकार का होता है—पृष्ठभूमि अंकन के रूप में तथा स्वतन्त्र रूप में। अन्य कवियों की भाँति पन्तजी ने भी दोनों प्रकार से ही प्रकृति के संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत किये हैं। यथा:—

"झरगई कली झरगई कली

....

है लेन देन ही जग जीवन
अपना पर सबका अपनापन
खो निज आत्मा का अक्षय धन
लहरों में भ्रमित गई निगली

यहाँ कवि ने प्रकृति चित्रण पृष्ठभूमि अंकन के रूप में किया है। पंतजी भावुक होने के साथ-साथ एक गंभीर विचारक भी रहे हैं; अतः उनकी बुद्धि अति शीघ्र प्रकृति से तथ्य की ओर अग्रसर हो जाती है। ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ पन्तजी प्राकृतिक दृश्य को देखते-देखते चिन्तन करने लगते हैं। प्रस्तुत कविता में कवि ने किसी कली को लहरों में गिरकर नष्ट होते देखा है और वह दृश्य उसके चिंतन की पृष्ठभूमि बन गया है। 'नौका विहार', 'सुमन के प्रति', 'एक तारा' आदि अन्य अनेक रचनाओं में भी प्रकृति का उपयोग इसी आधार पर किया गया है।

संश्लिष्ट स्वतन्त्र प्रकृति चित्रण में भी पंतजी सिद्धहस्त हैं। आपके प्रकृति चित्रण स्फुट तथा गतियों के रूप में प्राप्त होते हैं। पंतजी की दृष्टि पैनी, हृदय भावुक, तथा मस्तिष्क कल्पनाशील है। अतः वे जिस वर्णन को उठाते हैं वह रमणीक और चित्रमय हो उठता है। एक चित्र देखिये :—

कवि को प्रकृति का रम्य वातावरण क्यों दुखदाई प्रतीत होता है ? केवल इसलिये कि कवि वियोगी है, उसे प्रकृति के सुन्दर रूप इसी कारण दुखदाई हो गये हैं। जब वह फूलों के प्यालों में उपवन को अपना यौवन मधुकर को पिलाते देखता है अथवा जब नवोढ़ा बाल लहर उपकूलों के प्रसूनों के समीप रुककर अचानक सत्वर सरक जाती है तब उसका एकाकीपन उसे अखरने लगता है, उसका विरह से कृश हुआ गात सिहर उठता है और पग अज्ञात भाव से ठहर जाते हैं :—

देखता हूँ जब उपवन
पियालों में फूलों के
प्रिये भर-भर अपना यौवन
पिलाता है मधुकर को;
नवोढ़ा बाल लहर
अचानक उपकूलों के
प्रसूनों ढिंग रुककर
सरकती है सत्वर;
अकेली आकुलता सी प्राण !
कहा करती तब मृदु आघात
सिहर उठता कृश गात
ठहर जाते हैं पग अज्ञात !"

इस प्रकार पंत की कविता में प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण सुन्दर तथा रमणीय रूप में प्राप्त होता है।

उपदेश देने के रूप में प्रकृति—इस रूप में कवि प्रकृति से शाश्वत तथ्यों का ज्ञान प्राप्त करता है। प्रकृति के दृश्य कवि को जीवन के किसी तथ्य की ओर संकेत करते हैं। देखिये 'अनित्य जग' शीर्षक रचना में कवि प्राकृतिक दृश्यों को आँख बदा की देखकर जीवन की अस्थिरता, चिरन्तन परिवर्तनशीलता का अनुभव करता है—

"आज तो सौरभ का मधुमास
शिशिर में भरता सूनी साँस !

हो जाती हैं और गृह-पुलिन लांघकर पुलकपूर्ण नृत्य करने लगती हैं। इस विह्वलता में उनके वक्षस्थल से आँचल सरक जाता है—

> "सुन मधुर मरुत मुरली की ध्वनि
> गृह पुलिन लांघ, सुख से विह्वल
> हम हुलस नृत्य करतीं हिलमिल
> खस-खस पड़ता उर से आँचल।"

इस प्रकार कवि पंत ने प्रकृति के अनेक रूपों को मानव जीवन से अनुप्राणित देखा है और उनका सफल एवं सजीव तथा पूर्ण चित्रण किया है।

परिगणन शैली—इसमें कवि केवल वस्तुओं की गणना मात्र करता है और उसी के द्वारा प्राकृतिक दृश्य की रूप रेखा देने का प्रयत्न किया है। कवि पंत की कला ने इस शैली को विशेष आकर्षक बना दिया है। 'ग्राम श्री' कविता में पक्षियों का यह वर्णन देखिये :—

> "अंगुली की कंघी से बगुले
> कलंगी संवारते हैं कोई
> तिरते जल में सुरखाब
> पुलिन पर मगरौठी रहती सोई।
> डुबकियाँ लगाते सामुद्रिक
> धोती पीली चोंचे धोबिन
> उड़ अबाबील, टिटिहरी, बया
> चाहा चुगते कर्दम, कृमि, तृन।"

इसी प्रकार कवि ने ग्राम्य की एक रचना में उपवन में पुष्पित कुसुमों का एक सूची-पत्र सा प्रस्तुत किया है। यद्यपि यह शैली नीरस होती है किन्तु कवि ने अपनी संवेदना और कला विदग्धता के आधार पर इस नीरस शैली को अत्यधिक सरस बना दिया है।

अलंकार रूप में प्रकृति—इस रूप में प्रकृति का प्रयोग सर्वाधिक होता है। साहित्य के आदि काल से ही कवि उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपकादि की सामग्री प्रकृति के कोष से प्राप्त करता रहा है। कवि पंत ने भी अलंकारों का प्रयोग किया है।

उनकी कविता में प्रकृति अलंकार रूप में प्राप्त होती है। उदाहरण के लिये :—

"इन्द्र धनु सा आशा का सेतु
अनिल में अटका कभी अछोर।"

भावी के लिये कुहरे का प्रयोग भी ऐसा ही है—

"कभी कुहरे सी धूमिल घोर
दीखती भावी चारों ओर।"

प्राणों का जुगनुओं के समान उड़ना भी विचित्र है—

"जुगनुओं से उड़ मेरे प्राण
खोजते हैं तब तुम्हें निदान।"

स्मरण की विद्युत से उपमा देना भी एक नवीन मनोदृष्टि का परिचायक है

"तड़ित सा सुमुखि तुम्हारा ध्यान
प्रभा के पलक मार उर चीर।"

इस प्रकार के अनेक प्रयोग कवि पंत की रचनाओं में देखे जा सकते हैं।

रहस्यात्मक रूप में प्रकृति—छायावाद में प्रकृति सचेतन रूप में आई है। के अनुसार प्रकृति में किसी चेतन सत्ता की स्थिति है जिसे देखकर कवि में ासा होती है जिसकी अभिव्यक्ति कई प्रश्नों के रूप में होती है। कवि पंत वर का लहराना देखकर उसमें किसी इच्छा विशेष की स्थिति का अनुमान ते हैं और यह अपूर्ण अनुमान उन्हें जिज्ञासु और आतुर बना देता है :—

शान्त सरोवर का उर
किस इच्छा से लहराकर

मौन निमंत्रण' कविता में कवि को नक्षत्र, लहर, ओस-कण, बादल प्रकृति के दृश्यों से आमंत्रण प्राप्त होते हैं। उषा की कनक मदिर मुसकान उस पर प्रियतम का आभास पाता है :—

"उषा की कनक मदिर मुसकान
उसी में था क्या वह अनजान।"

उके सुकुमार प्रियतम कभी उड़ते पत्तों के साथ उसे मिलते हैं और कभी हाथ बढ़ाकर उसे आमंत्रित करते हैं :—

"कभी उड़ते पत्तों के साथ
मुझे मिलते मेरे सुकुमार
बढ़ाकर लहरों से निज हाथ
बुलाते मुझको फिर उस पार।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि पन्त ने प्रकृति को सचेत रूप में देखा है और उसे उन्होंने ब्रह्म से समन्वित भी किया है।

संक्षेप में पंत जी के प्रकृति चित्रण की ये ही विशेषतायें हैं।

प्रश्न ४—पंत जी की प्रतिभा का क्रमिक विकास दिखाते हुये उनकी रचनाओं का उल्लेख कीजिये।

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर पाठ के आरम्भ में पढ़िये।

प्रश्न ५—पंत के काव्य में उनकी प्रगतिवादी विचारधारा का स्वरूप स्पष्ट कीजिये।

उत्तर—'वीणा' से 'गुंजन' तक कवि पन्त कल्पना और भावुकता के मोह जाल में खोये हुये रहे। जीवन की यथार्थ दृष्टि अभी तक उनमें इतनी जागरूक नहीं हुई थी कि वे ठोस संसार के आर पार देख पाते। युगान्त में पन्त जी को नवयुग की चेतना अपने जागरण पाश में आबद्ध कर लेती है। यहाँ से कवि की विचार-धारा प्रगतिवादी हो जाती है। वह जड़ पुरातन बन्धनों को तोड़ने की प्रेरणा के स्वर में बोल उठता है:—

"द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र!
हे स्रस्त ध्वस्त! हे शुष्क शीर्ण!
हिम ताप पीत, मधु वात भीत,
तुम वीतराग जड़ पुराचीन
निष्प्राण विगत युग! मृत विहंग!
जग नीड़ शब्द औ श्वासहीन
च्युत अस्त-व्यस्त पंखों से तुम
झर झर अनन्त में हो विलीन।"

'ग्राम श्री' कविता में कवि ने धरती का गौरव गान करते हुये धरती की अद्भुतमयता चित्रित की है:—

"देखो भू को।
जीव प्रसू को
हरित भरित
पल्लवित मर्मरित
कुंजित गुंजित
कुसुमित
भू को।"

यह सुन्दर भू मानव के चरण स्पर्श से और भी अधिक स्पृहणीय हो गई है :—

"जिस पर अंकित
सुर मुनि वन्दित
मानव-पद तल
देखो भू को
स्वर्गिक भू को
मानव पुण्य प्रसू को।"

यह धरती स्वर्गिक है, मानव प्रसू है तथा पुण्य प्रसू है।

नैतिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह करते हुये पन्त कहते हैं:—

"युग युग से रच शत शत नैतिक बन्धन।
बाँध दिया मानव ने पीड़ित पशु तन।
विद्रोही हो उठा आज पशु दर्पित
वह न रहेगा अब नवयुग में गर्हित।
नहीं सहेगा रे वह अनुचित ताड़न
रूढ़ नीतियों का गत निर्मम शासन।"

पन्तजी को साम्यवाद और गांधीवाद दोनों ही धाराओं ने प्रभावित किया। एक में सांस्कृतिक विभूति है और दूसरी में भौतिक आवश्यकता। कवि ने इन दोनों को ही सम्मान और समन्वय की दृष्टि से देखा है। 'बापू के प्रति' कविता में पन्तजी की श्रद्धा गांधीजी के प्रति साकार हो उठी है। मार्क्स ने भी युग मनोरुचि के कारण पन्तजी को प्रभावित किया। उन्होंने लिखा है :—

"धन्य मार्क्स ! तुम तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान, चक्षु से प्रगट हुये प्रलयंकर।"

'समाजवाद गांधीवाद' कविता में कवि ने दोनों का समन्वय करते हुये लिखा है :—

"साम्यवाद ने दिया जगत को सामूहिक जनतन्त्र महान
भव जीवन के दैन्य दुःख से किया मनुजता का परित्राण।
× × ×
गांधीवाद जगत में आया ले मानवता का नव मान
सत्य अहिंसा से मनुजोचित नव संस्कृति करने निर्माण
× × ×
मनुष्यत्व का तत्व सिखाता निश्चय हमको गांधीवाद
सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अविवाद।

कवि पन्त ने पूंजीवाद और साम्राज्यवाद को हेय बताते हुये साम्यवाद के दृष्टिकोण को महत्व दिया है। पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के ध्वस्त होने की सूचना देते हुये उन्होंने लिखा है :—

"मुखियों के कुलपति सामंत महन्तों के वैभव क्षण
विला गये बहु राजतन्त्र सागर में ज्यों बुद्‌बुद्‌ कण
रजत स्वप्न साम्राज्यवाद लेकर नयनों में शोभित
पूँजीवाद निरा भी है होने को आज अपावन।"

पूंजीपतियों की नृशंसता और विलास पूर्ण जीवन पर कवि ने व्यंग और घृणा से भरा हुआ निम्न चित्र अंकित किया है :—

"वे नृशंस हैं, वे जन के श्रम बल से पोषित
दुहरे धनी, जोंक जग के भू जिनसे शोषित।
सुरांगना, संपदा सुराओं से संसेवित
नर पशु वे भू भार मनुजता जिनसे लज्जित।
दर्पी, हठी, निरंकुश, निर्मम, कलुषित, कुत्सित,
गत संस्कृति के गरल, लोक जीवन जिनसे मृत।

'जग जीवन का दुरुपयोग है ढोंगी जीवन,
अब न प्रयोजन उनका अन्तिम है उनके क्षण।"

श्रमजीवी वर्ग के प्रति पन्तजी बड़ी श्रद्धा रखते हैं। वे श्रमजीवी को पवित्र कर्मठ, चरित्रवान और कष्ट सहिष्णु मानते हैं। श्रमजीवी ही नव्य सभ्यता के उन्नायक हैं :—

"यह पवित्र है : यह जग के कर्दम से पोषित,
शीत-ताप औ' क्षुधा तृषा में सदा संयमित।
दृढ़ चरित्र वह कष्ट सहिष्णु, धीर निर्मम चित !
लोक क्रान्ति का अग्रदूत, वर वीर जनादृत
नव्य सभ्यता का उन्नायक शासक औ' शासित !

इसी प्रकार कवि की कृषक के प्रति भी आस्था है। अपने सम्पूर्ण अन्ध विश्वासों तथा रूढ़ियों के उपरान्त भी वह आदर्श मानव दिखाई पड़ता है। वह परिश्रमी है किन्तु उसके परिश्रम का फल उसे नहीं मिलता इसलिये कवि का मन क्षुब्ध हो उठता है।

सामाजिक विषमता के प्रति भी कवि का आक्रोश है। पन्तजी जग का अधिकारी उसे मानते हैं जो निर्बल है। सत्ताधारियों ने संसार को अपने हाथों में कर लिया है, उन शासन में निर्धनों और बलहीनों को कहीं भी स्थान नहीं है:—

"जग का अधिकारी है वह जो है दुर्बलतर।
वह्नि बाढ़ उल्का झंझा की भीषण भू पर
कैसे रह सकता है कोमल मनुज कलेवर !
निष्ठुर है जड़ प्रकृति सहज भंगुर-जीवितजन,
मानव को चाहिये यहां मनुजोचित साधन।

प्रगतिवादी काव्य में कवि ने ग्राम जीवन के भी चित्र प्रस्तुत किये हैं। इन चित्रों के मूल में भी कवि की वैषम्य भावना दिखाई देती है। ग्राम युवती के सौन्दर्य और यौवन को अल्प स्थायी और धनी स्त्रियों को वृद्धावस्था तक युवती देखकर कवि को दुःख होता है:—

"दो दिन का
उसका यौवन !
सपना छिन का
दुःखों से पिस
दुर्दिन में घिस
जर्जर हो जाता उसका तन
ढह जाता असमय यौवन धन।
बह जाता तट तिनका
जो लहरों से हँस खेला कुछ क्षण।"

ग्राम के रहने वाले मानव शापित हैं, अन्न वस्त्र से हीन हैं, असभ्य और बुद्धिमान हैं। यह ग्राम नहीं है, रौरव नर्क है। यहाँ नरनारी कीड़ों के समान हैं:—

"यहाँ खर्वनर रहते युग युग से अभिशापित !
अन्न वस्त्र पीड़ित असभ्य निर्बुद्धि पंक में पालित
यह तो मानव लोक नहीं रे यह है नरक अपरिचित
यह भारत का ग्राम सभ्यता संस्कृति से निर्वासित
भाड़ फूस के विवर-यहीं क्या जीवन शिल्पी के घर ?
कीड़ों से रेंगते कौन ये ? बुद्धि प्राण नारी नर ?"

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि सामाजिक वैषम्य से ऊबकर ही साम्यवाद की ओर उन्मुख हुआ है किन्तु फिर भी उसने सांस्कृतिक चेतना का आँचल नहीं छोड़ा है। भौतिक जीवन को सुखी बनाने के साथ-साथ वह आध्यात्मिक जीवन की चेतना देने में भी जागरूक दिखाई देता है।

प्रश्न ६—कवि पन्त के कलापक्ष की विशेषताएँ बताते हुये संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित लेख प्रस्तुत कीजिये।

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर पाठ के आरम्भ में कवि के परिचय के अन्तर्गत पढ़िये।

प्रश्न ७—जीवन की अनित्यता और परिवर्तनशीलता पर पन्त जी विचार संक्षेप में बताइये।

उत्तर—जीवन अनित्य और क्षण भंगुर है। प्राचीन काल से साधक और चिन्तनशील व्यक्ति इस तथ्य की ओर संकेत करते आये हैं। सन्तों और भक्तों की यह प्रधान प्रवृत्ति रही है। उनका मार्ग संन्यास और विरक्ति का रहा है। इस वैराग्यपूर्ण विचारधारा का प्रभाव साहित्य पर भी निरन्तर पड़ता आया और कवियों ने इस विचार धारा को अपने काव्य में स्थान दिया। फलस्वरूप एक ओर कवि पलायनवादी हो गया और दूसरी ओर जीवन की विषमता देख कर क्रान्तिवादी। कवि पन्त इसीलिये प्रगतिवादी हुये।

पन्तजी ने जीवन की अनित्यता और क्षणभंगुरता का चित्रण बड़ा ही यथार्थ रूप में किया है। वे सौरभ के मधुमास को शिशिर में सूनी साँसें भरते हुये देखते हैं। मधु ऋतु की वह गुंजित डाल जो कल यौवन के भार से झुकी हुई थी आज अपनी अकिंचनता में काँप उठती है। उसका जीवन भार होगया है। वर्षाकालीन सरिता की कामना रूपी लहरियाँ आज प्रलय का वातावरण समुपस्थित कर रही हैं। प्रभात के सुनहले संसार को संध्या की ज्वाला जला देती है। यौवन के समस्त उभरे हुये रंग फीके पड़ जाते हैं और शरीर अस्थियों का कंकालमात्र रह जाता है। काले स्कन्ध केश, कांस, केंचुल तथा शिवार के समान श्वेत और आकर्षण विहीन हो जाते हैं। सभी के चार दिन गीत गुंजित होते हैं और फिर सभी हाहाकार में परिवर्तित हो जाते हैं—

> "आज तो सौरभ का मधुमास
> शिशिर में भरता सूनी सांस।
> वही मधुऋतु की गुंजित डाल
> झुकी थी जो यौवन के भार,
> अकिंचनता में निज तत्काल
> सिहर उठती जीवन है भार।
> आज पावस नद के उद्गार
> काल के बनते चिन्ह कराल

प्रात का सोने का संसार
जला देती सन्ध्या की ज्वाल।
अखिल यौवन के रंग उभार
हड्डियों के हिलते कंकाल;
कचों के चिकने काले व्याल
केंचुली कांस सिवार।
गूँजते हैं सबके दिन चार
सभी फिर हाहाकार।"

इधर जन्म नेत्र खोलता है और उधर मृत्यु क्षण-क्षण नेत्र बन्द कर देती है। अभी उत्सव और हास, हुलास है और यहीं पर अवसाद, अश्रु तथा उच्छ्वास को स्थिति हो जायगी।

"खोलता इधर जन्म लोचन,
मूँदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण,
अभी उत्सव और हास हुलास
अभी अवसाद अश्रु उच्छ्वास"

संसार की इस अनित्यता पर कवि ने सम्पूर्ण प्रकृति को दुखी चित्रित किया है। इसीलिये उसकी दुखानुभूति इतनी व्यापक और मार्मिक हो उठी है।

"अचिरता देख जगत की आप
शून्य भरता समीर निःश्वास,
डालता पातों पर चुपचाप
ओस के आँसू नीलाकाश
सिसक उठता समुद्र का मन
सिहर उठते उडुगन।"

परिवर्तनशीलता भी कवि के लिये भय और आक्रोश की वस्तु है। परिवर्तन को कवि निष्ठुर कहता है। उसी के संकेत पर सृष्टि का उत्थान पतन होता है। वह सहस्रफन वासुकि के समान है जिसके अलक्षित लक्ष चरण जग के विदत वक्षस्थल पर निरंतर चिन्ह छोड़ रहे हैं। उसकी फेनयुक्त

प्रश्न ७—जीवन की अनित्यता और परिवर्तनशीलता पर पन्त के विचार संक्षेप में बताइये।

उत्तर—जीवन अनित्य और क्षण भंगुर है। प्राचीन काल से साधक और चिन्तनशील व्यक्ति इस तथ्य की ओर संकेत करते आये हैं। सन्तों और भक्तों की यह प्रधान प्रवृत्ति रही है। उनका मार्ग संन्यास और विरक्ति का रहा है। इस वैराग्यपूर्ण विचारधारा का प्रभाव साहित्य पर भी निरन्तर पड़ता आया और कवियों ने इस विचार धारा को अपने काव्य में स्थान दिया। फलस्वरूप एक ओर कवि पलायनवादी हो गया और दूसरी ओर जीवन की विषमता देख कर क्रान्तिवादी। कवि पन्त इसीलिये प्रगतिवादी हुये।

पन्तजी ने जीवन की अनित्यता और क्षणभंगुरता का चित्रण बड़ा ही यथार्थ रूप में किया है। वे सौरभ के मधुमास को शिशिर में सूखी साँसें भरते हुये देखते हैं। मधु ऋतु की वह गुंजित डाल जो कल यौवन के भार से झुकी हुई थी आज अपनी अकिंचनता में काँप उठती है। उसका जीवन भार होगया है। वर्षाकालीन सरिता की कामना रूपी लहरियाँ आज प्रलय का वातावरण समुपस्थित कर रही हैं। प्रभात के सुनहले संसार को संध्या की ज्वाला जला देती है। यौवन के समस्त उभरे हुये रंग फीके पड़ जाते हैं और शरीर अस्थियों का कंकालमात्र रह जाता है। काले स्कन्ध केश, कांस, केंचुल तथा सिवार के समान श्वेत और आकर्षण विहीन हो जाते हैं। सभी के चार दिन गीत गुंजित होते हैं और फिर सभी हाहाकार में परिवर्तित हो जाते हैं—

> "आज तो सौरभ का मधुमास
> शिशिर में भरता सूनी सांस।
> वही मधुऋतु की गुंजित डाल
> झुकी थी जो यौवन के भार,
> अकिंचनता में निज तत्काल
> सिहर उठती जीवन है भार।
> आज पावस नद के उद्गार
> काल के बनते चिन्ह कराल

प्रात का सोने का संसार
जला देती सन्ध्या की ज्वाल।
अखिल यौवन के रंग उभार
हड्डियों के हिलते कंकाल;
कचों के चिकने काले व्याल
केंचुली काँस सिवार।
गूँजते हैं सबके दिन चार
सभी फिर हाहाकार।"

इधर जन्म नेत्र खोलता है और उधर मृत्यु क्षण-क्षण नेत्र बन्द कर देती है। अभी उत्सव और हास, हुलास है और यहीं पर अवसाद, अश्रु तथा उच्छ्‌वास की स्थिति हो जायगी।

"खोलता इधर जन्म लोचन,
मूँदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण,
अभी उत्सव और हास हुलास
अभी अवसाद अश्रु उच्छ्‌वास"

संसार की इस अनित्यता पर कवि ने सम्पूर्ण प्रकृति को दुखी चित्रित किया है। इसीलिये उसकी दुखानुभूति इतनी व्यापक और मार्मिक हो उठी है।

"अचिरता देख जगत की आप
शून्य भरता समीर निःश्वास,
डालता पातों पर चुपचाप
ओस के आँसू नीलाकाश
सिसक उठता समुद्र का मन
सिहर उठते उडुगन।"

परिवर्तनशीलता भी कवि के लिये भय और आक्रोश की वस्तु है। परिवर्तन को कवि निष्ठुर कहता है। उसी के संकेत पर सृष्टि का उत्थान पतन होता है। वह सहस्रफन वासुकि के समान है जिसके अलक्षित लक्ष चरण जग के विक्षत वक्षस्थल पर निरंतर चिन्ह छोड़ रहे हैं। उसकी फेनयुक्त

एक सौ वर्ष नगर उपवन
एक सौ वर्ष विजय वन।
सृजन, सिंचन, संहार।
आज सर्वोन्नत हर्म्य अपार
रत्न दीपावलि मन्त्रोच्चार।
उलूकों के कल भग्न विहार,
झिल्लियों की झनकार।"

इस प्रकार निष्ठुर परिवर्तन के प्रति कवि का क्षोभ स्पष्ट है। परिवर्तन और अनित्यता दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं। परिवर्तन से अनित्यता की भावना का उदय होता है और अनित्यता से ही परिवर्तन को उत्पत्ति होती है। अतः दोनों ही एक दूसरे के परिणाम हैं।

प्रश्न ८—पंतजी के भाव विधान पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर कवि परिचय के अन्तर्गत दी हुई सामग्री में सन्निहित है अतः उसका अध्ययन कीजिये।

प्रश्न ९—पंतजी के काव्य में निहित रहस्यवाद के तत्वों पर संक्षेप में अपने विचार प्रकट कीजिये।

उत्तर—"रहस्यवाद विश्व की परमसत्ता का बोध और साक्षात्कार है। ब्रह्म या ईश्वर से आत्मा के ऐक्य या सान्निध्य की धारणा रहस्यवाद कहलाती है।"[१]

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि रहस्यवाद एक आध्यात्मिक अनुभूति तथा क्रिया है।

रहस्यवाद के मूल में अद्वैतवाद की भावना रही है। अद्वैत से आशय है ब्रह्म और आत्मा का एकीकरण। भारतीय रहस्यवाद में यह पूर्णतः स्पष्ट है। कबीर की रहस्यानुभूति भी इसी प्रकार की है:—

---

१. डा० केशरीनारायण शुक्ल

रहस्यवाद के क्षेत्र में कवियों ने ब्रह्म को मातृ रूप में भी देखा है। ऐसी स्थिति में आत्मा शिशु के रूप में सामने आती है और परमात्मा का रूप सृष्टि जननी का हो जाता है। कविवर पंत ने भी इस भावना को अपनाया है। वे सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त अलौकिक चेतना सत्ता को मा के रूप में भी देखते हैं—

> "जब मैं थी अज्ञात प्रभात—
> मा, तब मैं तेरी इच्छा थी
> तेरी मानस की जलजात।
> तब तो यह भारी अन्तर
> एक मेल में मिला हुआ था
> एक ज्योति बनकर सुन्दर,
> तू उसंग थी मैं उत्पात।"

यहाँ कवि ने अपने को बालिका के रूप में प्रस्तुत किया है। उसके तथा उसकी मा के बीच माया रूपी अंधकार का व्यवधान है। एक समय ऐसा भी था जब मा और बालिका में इतना अन्तर नहीं था। आज कवि की आत्मा इस अन्तर को समाप्त कर देने के लिये व्याकुल है—

> "माँ वह दिन कब आयेगा जब
> मैं तेरी छवि देखूँगी
> जिसका यह प्रतिबिम्ब पड़ा है
> जग के निर्मल दर्पण में।"

साधकों ने परमतत्व को प्रकाश में देखा है। कबीर इस प्रकाश को सम्पूर्ण सृष्टि में बिखरा हुआ देखते हैं। कविवर पंत ने भी उस परमतत्व को यत्र-तत्र आलोक रूप में देखा है। ज्योति से उन्हें विशेष प्रेम है। 'मौन निमंत्रण' में कवि ने नक्षत्रों और विद्युत के बीच परमतत्व का आभास पाया। 'मुसकान' में विपिन में पावस के से दीप' कहकर परम प्रियतम के प्रेम से आपूर्ण भावनाओं को व्यक्त किया गया है। 'प्रार्थना' में कवि ब्रह्म को 'ज्योतिर्मय जीवन' के रूप में देखकर उससे संसार में मंगल प्रसार की प्रार्थना करता है:—